भक्त हृदय के उद्‌गार..

प्रेम भक्ति में खोये जो,
पतझड़ लगे बहार।

पत्थर कोमल शय्या भये,
जंगल भये फुलवाड़।।

कवच पहरा जिस नाम का,
दुःख भी उससे घबराये।

महा भयंकर परिस्थिति,
अनुकूल कहें बन जाये।।

- परम पूज्य माँ द्वारा
बताई गई शबरी की कहानी के
भक्तिमय प्रवाह का एक अंश

अनुक्रमणिका

१. *भक्त हृदय के उद्‌गार..*
परम पूज्य माँ का दिव्य ज्ञान प्रवाह

३ *हे हरि! मुझे वह जगह बतायें..*
जहाँ आप नहीं!
श्रीमती पम्मी महता

८ *भवसागर से तर जाऊँ..*
माझी राह तुम जाने हो!
'मुण्डकोपनिषद्', प्रथम मुण्डक - २/११

१३ *'तू आत्मवान बन..*
तब तुझे सब समझ आ जायेगा!'
अर्पणा प्रकाशन 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता - भगवद् बाँसुरी में जीवन धुन' में से

१८ *संकल्प पिया मैं तुम्हारी हूँ!*
सुश्री छोटे माँ

२३ *साधना - 'क्षुरस्य धारा' क्यों?*
श्रीमती शान्ता देवी

२६ *उपासना और लोक सेवा*
परम पूज्य माँ से 'पिता जी' के प्रश्नोत्तर

३२ *हम सभी के अतीव प्रिय बीजी के प्रति श्रद्धांजलि*
आभा भण्डारी

३६ *अर्पणा समाचार पत्र*

❖ ❖ ❖

सम्पादक की ओर से

गद्य में प्रस्तुत सभी लेख साधकों के प्रश्नों के उत्तर में परम पूज्य माँ द्वारा प्राप्त सत्संगों पर आधारित हैं और संकलन-कर्ता की निजी समझ के अनुकूल हैं। काव्य की पंक्तियाँ पूज्य माँ के मुखारविंद से प्रवाहित दिव्य प्रवाह का अंश हैं; जिसे सुश्री छोटे माँ ने लेखनी बद्ध किया है। अपनी पूर्ण सामर्थ्य के अनुसार उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुति में किसी भूल के लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

सम्पादक : *पूनम मलिक*
सह सम्पादक : *श्रीमती साधना पाल*

पता : अर्पणा आश्रम, मधुबन, करनाल
१३२ ०३७, हरियाणा, भारत

श्री हरीश्वर दयाल, अर्पणा ट्रस्ट, मधुबन, करनाल १३२ ०३७ ०१, हरियाणा द्वारा दिसम्बर २०१९ को प्रकाशित तथा सोना प्रिन्टर प्राईवेट लिमिटेड, एफ -८६/१, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया फेज़-I, नई दिल्ली ११० ०२० द्वारा मुद्रित

हे हरि! मुझे वह जगह बतायें..
जहाँ आप नहीं!

श्रीमती पम्मी महता

श्रीमती पम्मी महता परम पूज्य माँ के प्रति असीम स्नेह व वन्दनीय भाव रखती हैं। कई वर्षों से वह प्रति दिन अपने हृदय के भावों को पतिया के रूप में पूज्य माँ को अर्पित करती रही हैं। यहाँ पर उन्हीं की एक पतिया प्रस्तुत की जा रही है -

"जी हाँ, जब से आपके पहलू में आई हूँ, यही देखती रही हर पड़ाव पर.. 'यहाँ आप हैं.. यहीं आप हैं'! वह मेरा भ्रम होता मगर कभी कभी भ्रम में जीना भी अच्छा लगता.. सच, बहुत अच्छा लगता! क्योंकि भ्रम में जीने की भी अपनी ही एक अदा होती है। आप भ्रम में कभी नाउम्मीद नहीं होते। एक तरह से ज़िंदादिली बनी रहती है कि अगले पड़ाव पर आप मिलेंगे! इसीलिये सदैव आप से प्रेरित हुई आगे से आगे चलती ही चली जाती..

धीरे-धीरे चलते हुए, हर पड़ाव पर यही पता चलता.. अभी तो 'मैं' मेरी साथ-साथ चल रही है, इस 'मैं' में ही मेरा निवास है। आप ठीक कहा करते थे, 'एक म्यान में 'मैं' और भगवान जी नहीं रह सकते।' जैसे जैसे क़दम बढ़ते.. आप स्वयं को इतना सा प्रकट

करते जो मैं उठा (समझ) सकूँ। वहाँ ज्ञान का बोझ नहीं होता था। प्यार में खिली कोमल भावनाओं का प्रसाद होता और दूसरी ओर 'मैं' में निवास होता। यह दोनों साथ-साथ चलते जा रहे थे। जहाँ 'मैं' होती, वहाँ आप होकर भी नहीं होते.. अर्थात् आप मेरा मार्गदर्शन तो करते जाते.. मेरे भ्रम के, मेरी अज्ञानता के परदे उठाते जाते। यही आस बँधी रहती कभी न कभी, कहीं न कहीं, किसी मोड़ पर तो आप प्रभु जी को मिल पाऊँगी! इसीलिए उदास भी नहीं होती थी और निराश भी नहीं! अच्छा तब लगता, जब आप एक हसीन मोड़ दे कर मुझे आगे बढ़ने के लिये यूँ प्रेरित करते जाते। बहुत ही उत्साहित होकर पुनः चलने लगती।

आप अनन्त की लीला आप ही जानें! जिनका आदि-अंत मनस्वी, तपस्वी व संत-महात्मा कितनी तपस्या के बाद ही जान पाते हैं, वहाँ मेरी बिसात ही क्या थी? सच पूछिये, तो इसीलिए आश्वस्त रहती कि आप श्री हरि माँ प्रभु जी ही मेरा मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं.. और मुझे लिवाये लिए जा रहे हैं। इस अहसास को ढूँढने पर भी शब्द नहीं दे पाती! आप माँ ने मुझे कभी टूटने नहीं दिया। मुझे गिरने से पहले ही आप माँ प्रभु जी के हाथ मुझे थाम लेते। ख़ुदा क़सम, कितना सुरक्षित महसूस करती मैं आप में! आपकी दी यह डगर, जो युगों से चली आ रही है; आप ही की कृपा से उस पर चलते ही चले जाना है मुझे!

जिज्ञासु तो थी ही मैं.. आगे से आगे जहाँ केवल आप ही आप हैं.. उन्हीं आपको, आप पूर्ण की पूर्णता में मुझे देखना है। आपका असीम प्यार व अनुग्रह ही था जो मुझे 'मैं' से निजात मिलने लगी और मैं आपके दिव्य दर्शनों की लालसा लिए अभिभूत रहती।

आपके दिव्य दर्शनों का मिलना - आप ही से पाई दिव्य दृष्टि का अनूठा प्रसाद था जो आपके हर पहलू में जागी रहती। तभी तो आप ही आप पर मेरा चित्त केन्द्रित था! यह भी आप विभूति पाद का करुण प्रसाद ही था जो आंतर में मुझे अनुगृहीत किये रहता - कृत्सन्कृत हुई रहती! इसीलिए बाहर की जगती मेरे लिए कहूँ, मेरे कल्याण के लिए कहूँ, आपने इसे परिस्थितियों में परिणत कर दिया.. तभी तो हर परिस्थिति मेरे लिए Teachable Moment (शिक्षा के पल) बनती चली गई। इसमें मेरे लिये क्या संदेश छुपा है? उसे जब भी ढूँढने का प्रयास करती, आप अपनी वाणी के राही (अप्रत्यक्ष रूप से) मुझे उसका उत्तर दे देते।

सच! प्यार में प्यारा आपका, आप पर कोई एहसान नहीं कर रहा होता। वह तो मुझे सत्य दिखा कर मेरा.. मुझे आगे चलने को प्रेरित करते जाते। कहाँ, किस शै में, कोई पल नहीं आया.. जब यह अहसास नहीं हुआ कि 'आप यहाँ नहीं हैं'! बहुत ही अनूठा व अद्‌भुत आकर्षण था आपका, आप ही की ज्योत्सना का आभास होता! कोई भी मेरे जीवन का पल ऐसा नहीं था जिस पर आप माँ प्रभु जी का नाम न लिखा होता। इसीलिए आंतर के झमेलों ने मुझे कभी नहीं उलझाया था। इसका यह अर्थ नहीं कि ज़िन्दगी में झमेले नहीं आते थे। जी हाँ! आते तो थे.. मगर समाधान देने वाले आप श्री हरि माँ, मुझे फँसने नहीं देते थे उनमें। बस राह दिखा कर वहाँ से निकाल कर ले जाते.. वही ग्रहण कर लेती जो आप इसे ग्रहण करवा लेते बड़े ही प्यार से!

कुछ अहसास ऐसे होते हैं जो जुबाँ पर नहीं आते। बस, आंतर में ही उतर हृदय का तस्सवुर बन जाते और आप 'माँ' के नाम के तब्बसुम खिले रहते! सच ही कहा है, जब

आप माँ प्रभु जी का नाम हृदय में बस जाता है तो आपकी दैवी सम्पदा मेरे जीवन का हिस्सा बनने लग जाती है। मगर मुझे पता नहीं चलता था, क्योंकि आपके चले क़दमों की आहट जो नहीं होती थी।

आप प्रभु माँ के क़दम कहीं ठहरते, तो मैं भी ठहर जाती। जैसे वक्त नहीं ठहरता, आप परम वन्दनीय माँ के क़दम कहीं भी नहीं रुकते थे क्योंकि आपके जीवन से यह रहगुज़र बन रही थी। जो ख़ुद रास्ता बना रहे हैं, यक़ीन नहीं वह ऐसा होगा! जहाँ पर 'मैं' की उपज नहीं होती.. वृत्तियों के झमेले नहीं लगते.. वहाँ राग-द्वेष की फुहार नहीं होती.. वहाँ 'मैं' 'तू' की कोई परछाईं नहीं: केवल दो ही क़दम चल रहे थे, उस पथिक के, जिसका जीवन अपने प्रभु में लीन था.. निःस्वार्थ, निश्छल, अतीव पावन प्रीत की डगर बन रही थी। छल-कपट का लेशमात्र कहाँ हो सकता था वहाँ?

कैसा सुन्दर व विलक्षण प्यार था! जहाँ सोच नहीं थी कुछ भी.. पूर्वनियोजित नहीं था कुछ भी वहाँ.. वहाँ तो निःस्वार्थता की पराकाष्ठा थी! अपनी कोई याद नहीं थी वहाँ। हर पल दूसरों को 'अपना आप' जान, उनके लिये जीने वाला कहाँ देखता है कि ज़माना उन्हें क्या दे रहा है? उनका तो एक-एक पल राम जी की अमानत था। ऐसी विलक्षण व अद्‌भुत चेतना में जीने वाले केवल आपके आंतर को ही तो बुहार कर स्वच्छ व निर्मल करते जाते हैं। तभी यह याद आये – 'हम कैसे, तुम कैसे प्रभु जी!' हम अपने हृदय से निकलते हुये आँसुओं से अपना आंतर मन, जो हम स्वयं मलिन किये हुए हैं, उससे निवृत्ति पा लें.. तभी तो जगत के स्वामी की भूमिका जान पायेंगे! उनके हृदय से निकले उद्‌गारों को जो हमारी पीड़ा हरने वाले हैं.. उन्हें उठा (समझ) पायेंगें। इन 'अनमोल रत्नों' का मोल कर पायेंगे, जो उन्होंने हमारी जीवन रूपी चुनरिया पर मड़े हैं.. इतने प्यार व दुलार से! अपने खून से सींच कर उन्हें सँजोया हुआ है।

ऐसी डगर पर चलते हुए यही जान पाई कि भगवान जी जीवन में पड़ाव क्यों नहीं देते.. चित्त को अपने श्री चरण से परम सौभाग्य क्यों देते हैं.. इसीलिये कि वही ग्रहण करूँ, जो आप करवा रहे हैं असीम श्रद्धा व भक्ति भाव से! क्योंकि चित्त जब आपके श्री चरणन् में आप ही की कृपा से स्थिर हो जाये, फिर जीवन में कुछ और पाने की चाहत नहीं रहती!

पड़ाव तो आते थे, मगर इस भाव का अभाव रहता कि मैं इधर जाऊँ या उधर जाऊँ, याख़ुदा किधर जाऊँ? 'मैं' की तरफ जाने का अर्थ ही यह होता कि आंतर में भटकना बनी रहती.. मन शांत न हो कर अशांत होता रहता। ऐसा तो कुछ भी नहीं होने दिया, आपने मेरे जीवन में! यह नहीं था कि जीवन के उतार-चढ़ाव मेरे जीवन में नहीं थे, मगर अपने माँ प्रभु जी में जो आस्था थी वह मुझे विचलित न होने देती। क्योंकि मुझे वहाँ से निकालने वाले आप माँ के हाथ जो होते थे। इसलिये यही लगता आप जो भी देंगे मेरे हित में होगा। इसलिये संशय नहीं उठते थे.. बल्कि उसके निवारण को उठे हाथ ही देखती रह जाती। कोई समस्या नहीं थी.. जिसका हल नहीं था उनके पास मेरे लिये!

मुझसे ज़्यादा मुझे जानने वाला ही तो मेरे लिये इस क़दर सोच सकता है। फिर क्यों न उन्हीं पर स्वयं को छोड़ दिया जाये? यही भाव आंतर सँजोये रखता और आप श्री हरि माँ के श्री चरणन् को चलते देखता रहता। कहीं भी मुझे यह नहीं महसूस होने दिया आपने.. कि मैं आपका 'अपना-आप' नहीं हूँ। मुझे अपने से अलग करके मेरी समस्याओं को आप नहीं देखते थे.. अपनी ही मान कर समाधान दे देते थे!

ऐसी करुण कृपा को पाने वाला जीव जगत से क्या माँगेगा.. जब दाता स्वयं अपने हाथों से दे रहे हैं! कहाँ निर्धन रहने देते हैं आप.. जिसपे आपकी इनायत हो जाये! आपका नज़रेकरम हो जाये! आपके हाथ मुझे कभी यह न महसूस होने देते कि आपके हाथ सदा मुझे आशीर्वाद देने के लिए ही नहीं उठे रहते हैं, क्योंकि आशीर्वादों से तो मेरा आंतर-बाहर भरा पड़ा है! इनका मोल मुझसे पूछिये, जिसने पाये ही पाये हैं, बेइंतहा पाये हैं यह आशीर्वाद! जीवन में कितने अनमोल हैं यह! मगर कभी नहीं भूलती कि आपने मेरे जीवन को संवारने के लिये हर क़ीमत चुकाई है अपने समेत.. अपना सर्वस्व लुटा कर.. ईश्वर करे आपकी हर देन का मोल जीवन में पाते हुए जीवन जी सकूँ – आमीन!

सच में ही इस रहगुज़र पर कोई मुक़ाम नहीं। मुक़ाम तब बन जाता है, जब मन मनमानी करना चाहता है या अपनी चाहतों को अपने ढंग से रँगना चाहता है। तभी 'मैं' प्रधान होने लगती है और दोष दृष्टि जन्म ले लेती है। जब कर्ता केवल करतार हैं, तो ज़ाहिर है आप हमें 'मैं' सहित 'मैं' के गुणों से निजात दिलाने के लिये व स्वयं से मुक्त होने के लिये सतत प्रयास कर रहे हैं। इसी परम सत्य में पूर्ण आस्था व श्रद्धा लिये चलते ही चले जाना है, उन श्री हरि माँ प्रभु जी के क़दमों के पाछे-पाछे.. बिल्कुल ख़ामोश हो कर.. एक निःस्वार्थ व निश्चल भाव से.. क्योंकि देने वाले स्वयं भगवान हैं। देश, काल, परिस्थिति के अनुरूप ही उन्होंने श्री हरि माँ का श्री विग्रह धारण किया हुआ है.. क्योंकि एक माँ ही है जो बच्चों को सही दिशा देती है! निःस्वार्थता तो उस माँ का सहज गुण है। जब स्वयं निःस्वार्थता की मूर्त सगुण वेष धर कर जगद्जननी श्री हरि माँ का वेष धारण करके धरा पर अवतरित होती है, तो उनके जीवन का एक ही प्रयोजन होता है.. भटके हुओं को राह पर ले आयें ताकि स्वयं से मुक्त हो कर,

सत् के द्वार पर आ जायें.. निष्काम कर्म करते हुये व अपने प्रभु के लिए जीते हुए!

परम आधार स्वयं श्री हरि माँ हैं – इसलिये कोई उपाधि धारण करने का अर्थ होगा, हम 'मैं' में लौट चले और फिर जीने की राह से वियोग हो गया.. जिनके हाथों स्वयं को सौंप कर सुर्ख़रू होना था, वहीं राहें बदल कर हम पुनः स्वार्थता का पथ अपना लेते हैं। वह हमें इसी सत्य चेतना में जगाने ही तो आते हैं। कहाँ हम से भूल हुई जो हम पथ भ्रष्ट हो गये? इसके अहसास की जा पर उसी निर्दोष परम पुरुष पुरुषोत्तम को दोष देने लग गये! मनन कर पायें.. इसके विपरीत हम पुनः मन के अधीन हो गये! उन वन्दनीय श्री हरि माँ प्रभु जी का आश्रय लिए रखते तो हम आज सकुशल अपनी मंज़िल की तरफ बढ़ते जाते। राह में स्वार्थता के काँटे तो आप श्री हरि माँ स्वयं बीन रहे थे। कितने घाव दिये हमने.. फिर भी आह नहीं भरी! गर हमें यह परम सत्य याद रहता तो माटी-माटी होकर उन्हीं के शरणापन्न हुये रहते.. हमारे सीस उन्हीं को सजदा देते हुये उन्हीं क़दमों में बिछे होते..

इस यथार्थता ने मुझे आप प्रभु माँ के पहलू से उठने ही नहीं दिया – इसलिये नहीं कि यह कोई मेरी करनी थी.. इसलिये जब करण-कारण स्वयं माँ प्रभु जी आप हैं, तो उन्हीं के क़दमों का सदक़ा उतारते हुये, उन्हीं में आस्था व विश्वास लिये, यही प्रार्थना मन ही मन करती रहती, 'हे माँ! मुझे अपने से विलग न होने देना!' आपका कृपा प्रसाद यह भी था कि मेरी दृष्टि केवल आप ही आप पर केन्द्रित की हुई थी, मुझे चहुँ ओर से समेट कर आपने! फिर कहाँ मिलते वह पल, जिन्हें अपना नाम दे सकूँ? इस अनमोल देन का आभार मानती हूँ और दुआ करती हूँ कि जीवनपर्यंत यूँ ही आपकी मेहर बनी रहे जो युगों-युगों तक आप ही आप में चलती चलूँ.. तब तक, जब तलक आप ही आप में जा विलीन न हो जाऊँ – आमीन!

हे श्री हरि नाथ! अपने से ही सनाथ रखे हुए इसे अपनी ही रौशनाई में लिवाते लिए जाना। यही विनती मेरी क़बूल कर लीजियेगा – मेरी भाव-भावनायें.. मेरी सभी इच्छायें, चाहनायें व मेरे क़दम.. आप ही की ओर अग्रसर हों। जब जान लिया मेरे करण-कारण आप ही हैं, फिर अपना दम भरने की गुस्ताख़ी करना बनता ही कहाँ है? इसलिये सदैव आप ही की होने की धारणा में यह चित्त स्थिर रहे। अपने आप से कभी भी वरग़लाई न जाऊँ! यही दुआ आपसे आप ही के साक्षित्व में करती हूँ.. भ्रमित न होकर यही याद रहे मुझे, 'अभी तो 'मैं' मेरी बाक़ी है, तोसों लग्न मेरी हुई नहीं'। जिस द्रष्टा भाव का प्रसाद आप प्रभु माँ से पाये हुए हूँ व इसी भाव से हृदय सँजो रखा है, इसके लिये आप माँ का जितना धन्यवाद करूँ, कम है!

यही असीस दीजिये अपनी कनीज़ को कि आप माँ की हर देन को सच्चे व सुच्चे मन से धारण करते हुए ही चलूँ.. जहाँ फिर आप माँ प्रभु जी के सिवा कुछ और नहीं रह जाता। कोटि कोटि धन्यवाद, हे श्री हरि माँ प्रभु जी!

मैं जानती हूँ आपने अपना श्री विग्रह त्याग दिया है, मगर मुझे आज भी उसी तरह सम्भाले हुये हैं। आपका हाथ सदैव मेरे सर पर रहता है! यही परम सत्य है- मेरे जीवन का माँ! इसी सत्यार्थ-प्रकाश में जीती रहूँ। जब तलक 'मैं, मैं न रहे, तू, तू न रहे, इक दूजे में समा जायें'।

ऐसे ही समा लेना इसे.. जो इक तू ही तू रहे। ईश्वर करे, इस आपकी कनीज़ के जीवन में आप ही आप विजयी हों! आप ही की जय हो! हरि ॐ" ❖

भवसागर से तर जाऊँ..

माझी राह तुम जाने हो!

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्या चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः पयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा।।११।।

- मुण्डकोपनिषद्, प्रथम मुण्डक - द्वितीय खण्ड, ११ श्लोक

शब्दार्थः

किन्तु जो वन में रहने वाले शान्त स्वभाव वाले विद्वान तथा भिक्षा के लिये विचरने वाले संयम रूप तप तथा श्रद्धा का सेवन करते हैं; वे रजोगुण रहित सूर्य के मार्ग से वहाँ चले जाते हैं; जहाँ पर वह जन्म-मृत्यु से रहित नित्य, अविनाशी परम पुरुष रहता है।

तत्व विस्तारः

जो वनवासी होये करी, तप आचरण रे करते हैं।
शान्त स्वभावी विद्वान जन, परम हिय में धरते हैं।।३।।

परम भिक्षा याचक जो, तप ही उनका जीवन है।
श्रद्धापूर्ण हिय रे है, राम राह ही जीवन है।।२।।

ना चाह कोई कुछ पाना नहीं, नाम के याचक ही वह हैं।
हृदय आरण्य में भ्रमण करें, राम के याचक ही वह हैं।।३।।

मनो प्रवाह वृत्ति प्रवाह, मनो लोक में रमण करें।
बस नाम गान ही हुआ करे, परम भाव में रमण करें।।४।।

निरन्तर तप ही होता है, मन तपोवन उनका है।
परम मिलन ही चाह एको, नाम ही नौका उनका है।।५।।

भव सागर मनो सागर, महा आरण्य एको है।
श्रद्धा नाम खेवैया भी, सर्वाधार रे एको है।।६।।

परम के आसरे चले चलें, ध्यान मग्न ही रहा करें।
नित्य निरन्तर इस मन में, राम नाम ही बहा करे।।७।।

शान्त मना ये रहते हैं, विक्षेप मन न पा सके।
द्वन्द्व पूर्ण मन जो है, ध्यान नहीं लगा सके।।८।।

शान्त स्वभाव ही हो जाये, राग द्वेष उठे ही ना।
एक चित्ति जो हो जाये, विपरीत भाव उठे ही ना।।९।।

विद्वान् उन्हें ही कहते हैं, निस्सारता जग की जान लें।
मनो सुख और तनो सुख, क्षणिक ही हैं जो जान लें।।१०।।

संग मिटे फिर लग्न मिटे, चाहना जग की ना रहे।
कुछ मिले मिले ना भी मिले, याद भी कुछ ना रहे।।११।।

तप पराकाष्ठा यह ही है, निरपेक्ष मन हो जाये।
उदासीन ऐसा भये, मनो रहित ही हो जाये।।१२।।

मन ही तो रजोगुणी है, कर्म यह मन ही करता है।
स्थूल दृश्य तो जड़ ही है, तम से बाह्य विचरता है।।१३।।

कार्य कारण समुदाय, यह जग सारा होता है।
रजोगुणी मन ही तो, इसका आधारा होता है।।१४।।

प्रेय पथ अनुरूप मन हो, जग को ही रे चाहता है।
श्रेय अनुयायी मन ही तो, परम की ओर रे जाता है।।१५।।

बाह्य वृक्ष नहीं बीज भये, बीज आन्तर वह बीज रहे।
तम रूप जड़ जग बदले न, मन आन्तर वह बीज पड़े।।१६।।

कर्मक्षेत्र यह मन ही है, यह बीज क्षेत्र में होता है।
सम्पूर्ण रे बाह्य क्षेत्र, स्थित इसी में होता है।।१७।।

कर्म यहीं पे होते हैं, रजोगुणी इसे ही कहें।
कर्माशय कारण तन में, एकत्रित यही बीज होयें।।१८।।

मनो प्रवाह ही जान ले, कर्म प्रवाह रे होता है।
शुभ अशुभ चाह रूप, फल दे यह ही होता है।।१९।।

तो ही तो वह कहते हैं, परिणाम ध्यान तू छोड़ दे।
शुभ्र भावना तब रहे, फल चाहना तू छोड़ दे।।२०।।

विपरीत या अनुकूल फल, निश्चित रे है हो चुका।
पूर्व कर्म कृत बाण, कमान परे है हो चुका।।२१।।

चाह रहित जो मन भये, रजोगुण रहित भये।
समझ सको तो समझ लो, मन तन मन रहित भये।।२२।।

उतरायण पथ अनुयायी जन, सूर्य पथ के पथिक रे थे।
चन्द्र पथ दक्षिणायन तो, पहले ही ये त्यज चुके।।२३।।

शान्त मना मनवासी हो, मनो आरण्य में रहते हैं।
वृत्ति वन वे ना देखें, मौन मन में रहते हैं।।२४।।

वही पाये यह परम सत्, मिथ्यात्व सों वह दूर रहे।
नित्य निरन्तर नाम में, मग्न जग सों दूर रहें।।२५।।

नित्य वह तप ही किया करें, तपमय जीवन हो जाये।
बाह्य वृत्ति इक पल ना हो, जो होये सो हो जाये।।२६।।

श्रद्धा है बस परम में, ध्यान परम में रहता है।
नित्य निरन्तर मनोप्रवाह, राम राम ही कहता है।।२६।।

बाह्य तप है तनो तप, श्रद्धापूर्ण मन भये।
एकान्तवासी हो गये, मन में ही आसन लगे।।२८।।

कोई चाह नहीं लग्न नहीं, आन्तर प्रज्ञ वह हो चुके।
मौन की ओर वह देख बढ़े, ध्यान स्थित वह हो चुके।।२९।।

नित्य ही नाम का गान रे हो, सूर्य पथ गामी रे भये।
हृदयलोक वह ब्रह्मलोक, वह परम लोक गामी रे भये।।३०।।

परम पद के याचक वह, बाह्य जग को भूल गये।
जो हो सो हो याद नहीं, स्थूल रूप वह भूल गये।।३१।।

पर राम कहो किस विधि, स्थिति यह हम भी पा जायें।
पूर्ण जग यह त्यज करी, तोरे चरण में आ जायें।।३२।।

जाने क्या है हो रहा, बिन मन मन है खो रहा।
भाव रहित रे जग वर्तन, मन सहित है हो रहा।।३३।।

निरीक्षण अपना आप करूँ, सत्त्व रे तुझको लो मैं कहूँ।
संग नहीं पर संग भी है, क्योंकर तुम ही कहो मैं करूँ।।३४।।

कोई मरे जीये मुझे कुछ ना हो, फिर भी धर्म निभाते हैं।
जो आये जो जो माँगे, सो ही करते जाते हैं।।३५।।

गर सोचूँ लग्न वहाँ मेरी, तो राम कहूँ रे नहीं नहीं।
तुम भी जानो राम मेरे, सत्य कहूँ रे नहीं नहीं।।३६।।

गर कहूँ वह याद भी आते हैं, तो कहूँ राम रे नहीं नहीं।
गर कहूँ अधिक वह पाते हैं, तो बात यह है नहीं नहीं।।३७।।

फिर भी जग वर्तन यह हो, तन देख वहाँ चल दे।
ख़ुद भी ना जाने राम मेरे, किस पल यह कहाँ चल दे।।३८।।

यह कहूँ जब मैं वहाँ जाऊँ, तो तुम पे चित्त रे रहता है।
कैसे कहूँ जग में जाकर, यह राम राम ही कहता है।।३९।।

ऐसी बात है नहीं नहीं, तू भी ना तब याद रहे।
कहूँ कि जग भी याद रहे, तो नहीं यह जग ना याद रहे।।४०।।

लब तो कहे और बहु कहे, तू जाने मन कुछ ना सोचे।
सब होये सब हुआ करे, सोच के यह कुछ ना सोचे।।४१।।

चिन्तन जग का भी नहीं, और तेरा चिन्तन भी ना हुआ।
राम क्या कहूँ रे कहो, तू आ के कहो मुझे क्या हुआ।।४२।।

तुम कहो विद्वान् जन, शान्त वन में रहते हैं।
तुम कहो चरण बैठे, वे राम राम ही कहते हैं।।४३।।

श्रद्धा तुम में ही है राम, तप पूर्ण जीवन भये।
राम रागिनी ही गाये, राम ध्वनि जीवन भये।।४४।।

इक दिन वह भी था हुआ, राम ध्वनि ही होती थी।
हर जा हर ही भावना में, नाम ध्वनि ही होती थी।।४५।।

अब तो ऐसी बात नहीं, ना जग की ध्वनि ना तेरी ध्वनि।
राम राम मैं सत्य कहूँ, नहीं रही रे कोई ध्वनि।।४६।।

क्या यह साधना गौण हुई, या यह कहूँ कुछ कुछ मन्द भयी।
या समझूँ ओ राम मेरे, पूर्ण ही यह बन्द हुई।।४७।।

गर कहूँ श्रद्धा है नाम में, नाम निरन्तर गाती हूँ।
नहीं नहीं अब नाम भी, राम रे भूल मैं जाती हूँ।।४८।।

गर कहूँ मनो तप नित्य करूँ, तो फिर भी कहूँ यह नहीं नहीं।
भूलूँ क्या रे कब रे हो, कुछ सोच करूँ मैं नहीं नहीं।।४९।।

तन मुस्काये रुदन करे, मन नाम भी नहीं रे ले।
सब होये और हुआ करे, कोई ध्यान भी नहीं रहे।।५०।।

ना नाम रहे ना जग ही रहे, कुछ भी याद ही ना रहे।
इस पल इतना ना समझूँ, कौन कर्म अब बाक़ी रहे।।५१।।

किसी को अब मैं अपनाऊँ, यह तो मेरे बस में नहीं।
किसी से दूर अब हो जाऊँ, यह भी मेरे बस में नहीं।।५२।।

भूले से मैं उठ बैठूँ, अनुचित उचित भी ना जानूँ।
मेरी सखी कहे यह उचित नहीं, इस पल तो इतना जानूँ।।५३।।

गर भाव ना हो तो राम कहो, अब भाव कहाँ से लाऊँ मैं।
मन में सोच ही नहीं उठे, सोच कहाँ पर पाऊँ मैं।।५४।।

सच ही कहे सखी यह मेरी, अब साधना नहीं रे होती है।
यह तन मानो निरर्थक है, जीवन अपना खोती है।।५५।।

अमर तत्व नहीं पाऊँगी, परम धाम नहीं पाऊँगी।
परम पुरुष अरे जहाँ बसे, अव्यव सत्त्व ना पाऊँगी।।५६।।

क्या कहूँ कहे कुछ ना बने, तुम तो सब कुछ जाने हो।
भवसागर से तर जाऊँ, माझी राह तुम जाने हो।।५७।।

कोई व्यवस्था ऐसी करो, अब सब छोड़ के चले चलें।
अनुचित गर तन नाते ये, नाता तोड़ के चले चलें।।५८।।

बस रे राम अब राम कहें, और नाम मग्न ही रहा करें।
कर जोड़े पुनः माँगूँ, भाव तेरे ही बहा करें।।५९।।

९-९-६१

❖ ❖ ❖

'तू आत्मवान बन..

तब तुझे सब समझ आ जायेगा!'

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

श्रीमद्भगवद्गीता २/२३

अर्जुन को भगवान कृष्ण पुनः आत्म तत्व का अव्यय तथा नित्य स्वरूप समझाते हुए कहने लगे :

शब्दार्थ :

१. इस आत्मा को शस्त्र आदि काट नहीं सकते;
२. इस आत्मा को अग्न जला नहीं सकती;
३. इस आत्मा को जल गीला नहीं कर सकता;
४. इस आत्मा को वायु सुखा नहीं सकती।

तत्व विस्तार :

भगवान कहते हैं 'अर्जुन! तू युद्ध कर!'

१. आत्मा पर इसका कोई असर नहीं होगा।

२. शस्त्र आदि इसे काट नहीं सकते।

प्रहार तन पर होते हैं, तन कट जाते हैं, किन्तु तन कट जाने से तन की मृत्यु होती है, आत्मा तो अप्रभावित रहता है।

३. अग्नि भी तन को भस्मीभूत कर सकती है किन्तु आत्मा को नहीं जला सकती। यह आत्मा जल जाने वाली वस्तु नहीं। आत्मा अग्न से नित्य अप्रभावित रहता है।

४. जल भी आत्मा को गीला नहीं कर सकता, बहा नहीं सकता, डुबो नहीं सकता। आत्मा जल से नित्य अप्रभावित रहता है।

५. वायु भी आत्मा को सुखा नहीं सकता।

वायु का वेग आत्मा को उड़ा नहीं सकता। वायु से भी आत्मा नित्य अप्रभावित रहता है।

सो भगवान कहते हैं कि 'अर्जुन! तू नाहक युद्ध का भय करता है।'

इसे साधक के दृष्टिकोण से समझ :

क) जो आत्म स्वरूप तू आप है, उसे जान ले।

ख) जो आत्म स्वरूप तू आप है, केवल वही ज्ञातव्य है।

ग) जो आत्म स्वरूप तू आप है, वही सर्वोच्च प्राप्तव्य है।

घ) तू तन नहीं, तू आत्मा है। इसी में स्थित होने के यत्न कर।

ङ) अखण्ड एकरस आत्मा तू आप है।

च) मृत्यु और जन्म से परे तू आप है।

छ) पंच महाभूतों के परे तू आप है।

ज) तन जलता है, तन शस्त्रों से कटता है, आत्म स्वरूप को कुछ नहीं होता। तू आत्मवान बन, तब तुझे सब समझ आ जायेगा।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।

श्रीमद्भगवद्गीता २/२४

भगवान फिर से आत्मा की बातें कहते हैं कि :

शब्दार्थ :

१. यह आत्मा अच्छेद्य है।
२. यह आत्मा अदाह्य है।
३. यह आत्मा अक्लेद्य है।
४. यह आत्मा नित्य है।
५. यह आत्मा अशोष्य है।
६. यह आत्मा नित्य सर्व व्यापक है।
७. यह आत्मा स्थिर रहने वाला और सनातन है।

तत्व विस्तार :

भगवान कहते हैं :

१. आत्मा **अच्छेद्य** है, अर्थात् :

क) जो कट न सके।

ख) जो टूट न सके।

ग) जिसका अभाव न हो सके।

घ) जिसकी असफलता नहीं हो सकती।

ङ) जिसका अन्त नहीं हो सकता।

२. **अदाह्य** है, अर्थात् :

क) जो जलने योग्य न हो।

ख) जो भड़क उठने योग्य न हो।

ग) जो भस्म भी न हो सके।

घ) जो पीड़ा न दे।

ङ) जो सन्तापित न करे।

३. **अक्लेद्य** अर्थात् :

क) जो गीला न हो सके।

ख) जिसे कष्ट न हो सके।

ग) जिसे दुःख न हो सके।

घ) जिसे पीड़ा न हो सके।

४. **अशोष्य** का अर्थ है :

क) जो सूख न सके।

ख) जो कुम्हला न सके।

ग) जो मुरझा न सके।

घ) जो चूसा न जा सके।

यह सब कह कर भगवान इतना ही दोहरा रहे हैं कि आत्मा में कदापि कोई परिवर्तन नहीं आता।

आत्मा तो नित्य ही अप्रभावित रहता है। जल, अग्न, वायु और पृथ्वी के गुण आत्मा में नहीं होते, तथा यह महाभूत आत्मा को अपने गुणों से प्रभावित नहीं कर सकते।

फिर कहते हैं, यह आत्मा नित्य है, सर्वव्यापक है, अचल है, स्थिर रहने वाला है, सनातन है।

इन सबके विपरीत गुण तन के होते हैं। यह तन :

१. न ही सनातन है।

२. न ही अचल है।

३. न ही सर्वस्थित है।

४. न ही नित्य रहने वाला है।

५. भई! इस तन की उम्र तो थोड़ी सी होती है।

६. इस तन को पंच तत्व ही बनाते हैं।

७. इस तन को तो पंच तत्व नित्य प्रभावित करते रहते हैं।

यह सब कह कर मानो भगवान कह रहे हों कि, 'अर्जुन! तू तो तन नहीं, तू तो आत्मा है। तू तन से संग क्यों करता है?'

'अपने आत्म स्वरूप के तद्रूप हो। तू नित्य सनातन, सर्वव्यापक तत्व का अंश है। अपने आपको इस मृत्युधर्मा तन से क्यों बांधे बैठा है?'

मोह :

देख नन्हीं! जब तक जड़ तन राही संसार को देखने के यत्न करती रहेगी, तब तक कुछ नहीं दिख सकेगा।

मोह अपने ही तन से होता है। जब अपने तन से संग हो जाये, या अपने आपको तन ही मानने लग जाओ, यह मोह के कारण ही होता है।

१. यहीं मोह का जन्म होता है।

२. यहीं अज्ञानता का जन्म होता है।

३. मोह ही आँख वालों को भी अन्धा कर देता है।

४. इस मोह के कारण ही जीव अपने स्वरूप को भी नहीं समझ सकता।

५. इस मोह के कारण ही जीव अपनी तनो स्थापना को ही महत्व देता है।

६. इस मोह के कारण ही धर्म का नाश होता है।

७. इस मोह के कारण ही जीव कर्तव्य से विमुख होना चाहता है।

८. मोह प्रथम अपने तन से होता है और फिर तन के नाते बन्धु तथा मित्र गण की ओर बढ़ता है।

९. इस मोह के कारण ही जीव न्याय नहीं कर सकता।

१०.इस मोह के कारण ही जीव व्यक्तिगत हो जाता है।

११.इस मोह के कारण ही जीव लोभ तथा कामना प्रधान बन जाता है।

१२.इस मोह के कारण ही जीव आसुरी गुणों वाला बन जाता है।

१३.इसी मोह के कारण ही जीव के मन में व्याकुलता, शोक, क्षोभ उत्पन्न होते हैं।

१४.इसी मोह के कारण ही जीव का चित्त अशुद्ध हो जाता है।

१५.यह मोह ही तो जड़ चित्त ग्रन्थियों को उत्पन्न करता है।

सो नन्हीं! सम्पूर्ण मनोविकारों का कारण तनोतद्रूपता है, या कह लो अपने वास्तविक आत्म स्वरूप की विस्मृति है।

इसलिये भगवान बार बार अर्जुन को आत्मा की बातें बता रहे हैं। सब बता कर उसे तनत्व भाव से परे करने के यत्न कर रहे हैं।

जब जीव तन से परे होने लगे, चित्त :

क) नितान्त शान्त हो जाता है।

ख) मनोविकार रहित हो जाता है।

ग) क्षोभ रहित हो जाता है।

घ) द्वन्द्व रहित हो जाता है।

ङ) शोक रहित हो जाता है।

अर्जुन की बीमारी भी तो यही थी, इसका इलाज भगवान स्वयं कर रहे हैं।

नन्हीं! हर इन्सान की बीमारी यही है और हर इन्सान का इलाज इसी तत्व ज्ञान सार में निहित है।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।।

श्रीमद्भगवद्गीता २/२५

भगवान कहते हैं :

शब्दार्थ :

१. यह आत्मा

२. अव्यक्त, अचिन्त्य, अविकार्य कहा जाता है,

३. इसलिये इसको ऐसा जान कर तुम्हारे लिये,

४. शोक करना उचित नहीं है।

तत्व विस्तार :

भगवान आत्मा की बातें अर्जुन से कहते हैं; हे अर्जुन! यह जो देह में रहने वाला देही है :

क) यह अव्यक्त है;

ख) यह अचिन्त्य है;

ग) यह अविकार्य भी है;

यानि अव्यक्त अर्थात् :

१. देखने में आने वाला नहीं है।

२. दृष्टि का विषय नहीं है।

३. इन्द्रियों का विषय नहीं है।

४. जो व्यक्तिगत न हुआ हो।

५. जो अप्रकट स्वरूप हो।

६. जो इन्द्रियों के राही ग्रहण न हो सके।

अचिन्त्य अर्थात् :

१. जो चिन्तन में न आ सके।

२. जो अज्ञेय तत्व हो।

३. जो बुद्धि का विषय न हो।

४. जिसका अनुमान भी न लगा सकें।

५. जो शब्दों से परे हो।

अविकार्य अर्थात् :

१. जो नित्य विकार रहित हो।

२. जिसमें परिवर्तन न आ सके।

३. जिसे मानसिक रोग ग्रसित न कर सकें।

४. जो संकल्प विकल्प से परे हो।

५. जो शोक, भय, क्रोध आदि से परे हो।

६. जो उद्विग्नता से परे हो।

भगवान अर्जुन को शोक विमुक्त करने के लिये आत्मा के गुण कहते हैं कि, 'आत्मा अव्यक्त, अचिन्त्य तथा अविकार्य है। यह जान कर तुझे तनिक भी शोक नहीं करना चाहिये। हे अर्जुन! यह शोक तुझे शोभा नहीं देता।'

नन्हीं! बात भी ठीक ही कही है। जब जीव तन है ही नहीं तब वह आत्मा ही तो है।

तनत्व भाव ही अज्ञानता है।

१. तन के कारण शोक करना मूर्खता है।

२. तन के कारण घबराना मूर्खता है।

३. तन को 'मैं' 'मैं' कहना भी तो मूर्खता है।

४. तन के कारण लोभ करना भी तो मूर्खता है।

५. तन के कारण रोना धोना भी मूर्खता है।

यही भगवान अर्जुन से कह रहे हैं।

नन्हीं! जब तू मन से तनत्व भाव को निकाल देगी, तब ही नित्य आनन्द में रह सकेगी।

जब तक तू अपने आपको यह पंचन्कृत माटी का बुत ही समझती रहेगी, तब तक आत्म तत्व को नहीं जान सकेगी। ❖

संकल्प पिया मैं तुम्हारी हूँ..

परम पूज्य माँ के सत्संग पर आधारित यह लेख 'अर्पणा पुष्पांजलि' के मई १९८६ के अंक में से पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है

मन्दिर में सामूहिक प्रार्थना, पूज्य छोटे माँ के अनुरोध पर :

'इतना बड़ा सौभाग्य मेरा, संकल्प पिया मैं तुम्हारी हूँ..'

परम पूज्य माँ: यह जन्म जन्म का, खेल तुम्हारा राम मेरे।
कर्मन का यह, खेल तुम्हारा राम मेरे।।

इस खेल में इस लीला में, इक लीला ही तो तुम्हारी हूँ।
हे राम मेरे मैं जानी हूँ, क्रीड़ा ही तो तुम्हारी हूँ।।

मेरे कहे न जन्म होये, न मेरे कहे कोई मरण होये।
मेरे कहे कोई न जिये, न कहे कहानी ख़त्म होये।।

फिर नई कहानी आरम्भ हो
वह भी जाई के, इक बेरी जो सो जाये, जाने कहाँ पे खो जाये।।

राम मेरे मैं जाने हूँ, मैं तो संकल्प तुम्हारी हूँ।
इतना बड़ा सौभाग्य मेरा, संकल्प पिया मैं तुम्हारी हूँ।।

ज्यों देखूँ राम मेरे, सपना कहीं पे आ जाये।
सपने में जो भी मिले, स्वप्न द्रष्टा ही घड़े।।

धरती भी सपने की, द्रष्टा ही तो होये है।।
हर नाम रूप जो भी धरे, वह सपना ही तो होए है।।

सपने में देखा जो देखा, जो भी नाम जहाँ जब देखा।
सपने में हमें जो भी मिला, वह मैं ही था जो द्रष्टा था।।

मैंने ही तो स्वप्न रचा, स्वप्न रूप में जीव रचे।
विषय रचे सब नाम रचे, सपने में बहु रूप रचे।।

बहु काज हुए बहु बातें हुईं, चर्चा भी हुई मैंने सब देखा।
पर सब ही ख़ुद मैंने रचा, वह मेरा सपना ही तो था।।

इसी विधि संकल्प तेरा, पूर्ण जो है सब तू ही है।
इस नाते मैं कहती हूँ, संकल्प तेरा सब तू ही है।।

पूज्य छोटे माँ - इतना बड़ा सौभाग्य मेरा, संकल्प पिया मैं तुम्हारी हूँ..

सच्ची उपासना क्या है, जो हमें लक्ष्य की ओर ले जाये?

परम पूज्य माँ : यदि उपासना करनी है तो साक्षी की कीजिये, जहाँ भी जायें, उस साक्षी को साथ ले जायें।

इस समय यह 'मैं' स्थूल तन के साथ लिपटी हुई है, और तन की पूजा करवाना चाहती है। दूसरी ओर सत्त की ओर जाने की चाहना है। सो एक ओर तन राही निष्काम कर्म हों जो तन के साथ 'मैं' की इस तदरूपता को ढीला करें, और दूसरी ओर हम जहाँ चलें, राम हमारे साथ साक्षी बन कर चलें। फिर कर्मों में प्रेम और दैवी गुण उपजेंगे, और ध्यान में स्वरूप, जो साक्षी बन कर साथ-साथ रहेगा। पहुँचना हमें वहाँ है, जिसे वेदांत अन्तिम पड़ाव "कैवल्य स्थिति" कहता है। वहाँ आत्म स्वरूप में स्थित होते हैं। यह आत्मवान की स्थिति है। यहाँ पहुँच कर वह कहते हैं "यत्र यत्र दृष्टि गत्वा, तत्र तत्र समाधिया" - अर्थात जहाँ जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ वहाँ समाधि लग जाती है।

अभ्यासार्थ यदि हम जीवन में उस साक्षी को साथ ले जायें, तो अन्त में हम केवल द्रष्टा-मात्र रह जाते हैं। द्रष्टा, दृष्टि और दर्शन से आरम्भ करके हमें उस साक्षी में जाकर टिकना है जो केवल द्रष्टा मात्र है, वह सब कुछ देखते हुए भी नित्य अप्रभावित रहता है। वास्तव में वही हमारा असली स्वरूप है, जिसके ऊपर यह तन भी एक आवरण है, और जिसमें यह सम्पूर्ण संसार स्वप्नवत् है। यह सारा उसका ही संकल्प है।

पूज्य छोटे माँ : हम किस तरह समझें कि हम संकल्प मात्र हैं?

परम पूज्य माँ : इसको स्वप्न की उपमा से समझो! स्वप्न में कोई हमारा मित्र, कोई हमारा दुश्मन बना, कई जानवर, कई इनसान भी थे, कोई हमें मिलने आया, कोई नाता, कोई बन्धु बना, किसी ने हमसे प्यार से बात की, किसी ने लड़ाई की - वास्तव में इन सबमें स्वप्न द्रष्टा के अतिरिक्त कोई अन्य था ही नहीं। न कोई बाहर से आया, न कोई गया। हम जो चारपाई पर आराम से सो रहे थे, यह पूर्ण स्वप्न हमारे अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

१. पूर्ण स्वप्न संसार हमने ही घड़ा..

२. स्वप्न में पूर्ण लोगों को हमने ही घड़ा..

३. हमने ही वहाँ धरती बनाई, हमने ही जल की धारा बनाई..

४. हमने ही कटु शब्द भी कहे और हमने ही प्रेम भी किया..

५. हमने ही भयंकर अस्त्र-शस्त्र भी बनाए।

हमने यह सब बनाए ही नहीं, बल्कि हम स्वयं ही यह सब बन गये, क्योंकि हमारी स्वप्नाकार वृति के अतिरिक्त स्वप्न में कुछ था ही नहीं। पूर्ण का पूर्ण स्वप्न हमारा ही संकल्प है। इस स्वप्न की हमारे अतिरिक्त कुछ भी सत्ता न होते हुए भी उस समय हमें यह हक़ीक़त ही लगती है।

वास्तव में सम्पूर्ण स्वप्न मन का ही एक खिलवाड़ है। वहाँ पर हम न होते हुए भी सब कुछ हम ही हैं। विभिन्न लोगों ने स्वप्न में विभिन्न प्रकार के कार्य किये। हर रूप में हम ही तो हर काज करने का नाटक कर रहे थे। वहाँ कटु शब्द कहने वाले भी और उन्हे सहन करने वाले भी हम ही थे।

यदि इस बात को हम समझ सकें तो अनुमान हो सकता है किस प्रकार यह सम्पूर्ण सृष्टि उस भगवान का संकल्प है। यदि हमारा स्वप्न इतना बड़ा संसार रच लेता है, तो भगवान जी का संकल्प पूर्ण दुनिया रच लेता है, इसमें क्या आश्चर्य है? हमें अपनी 'मैं' के संकल्प से उठकर भगवान के संकल्प में टिकना है। उसके संकल्प में जैसे वह राखे, वैसे ही रहना है। 'जेहि विधि राखे राम, तेहि विधि रहिये' इसमें सत्यता तभी आएगी, जब इस सत्य को मान लेंगे। यह "मैं" इतना बड़ा स्वप्न रच लेती है, इतने लोगों को वहाँ उत्पन्न

कर लेती है और यह भी जान लेती है कि इन सब की उत्पति, स्थिति, और लय भी मैं ही हूँ - सब मुझ से उठ कर मुझ में ही समा जाते हैं। इसी प्रकार स्वप्न नट की स्वप्न द्रष्टा के अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं। हम सब उन्हीं से उभरे हैं, वह चाहे जितनी देर हमें जीवित रखें या जब चाहें स्वप्न को भंग कर दें, यह सब उनका खिलवाड़ है। वह हम सब में है, यह सोच-सोच कर मन कृत्-कृत् हो जाता है और हम अपने को धन्य महसूस करने लगते हैं। इसके पश्चात् हमारे अस्तित्व का कहीं स्थान ही नहीं रहता। हम सब उसी के संकल्प की लड़ी में पिरोये हुए मोती हैं.. जिस प्रकार हमारे स्वप्न का व्यक्ति 'मैं' 'मैं' करने लग जाये तो मूर्खता है। यह तब तक ही है, जब तक वह स्वप्न को स्वप्न नहीं जान रहा।

इसी प्रकार यह संसार ब्रह्म का जागृत स्वप्न है। हम उन्हें ठुकरायें या अपनायें, माने या न माने, उन्हें क्या फ़र्क़ पड़ता है, हम तो संकल्प मात्र हैं उनका। अब इस संकल्प में एक छोटा सा तन, छोटा सा मन और उससे अधिक छोटी, मूर्ख बुद्धि जो भगवान ने रची है, अपने को तूफ़ान समझती है, और इसके कारण हम अपने को बहुत श्रेष्ठ समझने लग गए हैं। जब पता लगा कि यह सब भगवान का ही संकल्प है, यह धरती यह आकाश उसके अतिरिक्त कुछ नहीं - जिसने यह अनुभव किया, उसने कहा कि भगवान की रज़ा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता, कोई दूसरा मेरा अपमान कैसे कर सकता है? कोई कैसे जन्म दे सकता है, कोई कैसे मृत्यु ला सकता है? कोई कैसे संयोग या वियोग उत्पन्न कर सकता है? यह तो सब भगवान की लीला है, भगवान का संकल्प है। उसका संकल्प होने के नाते हम सब एक हैं। अपने को अलग अलग समझ कर हम व्यर्थ ही दुःखी हो रहे हैं।

साधक कहता है, 'भगवान! आपका नाम लिया तो पता चला कि मैं आपके ही संकल्प का एक अंश हूँ। अब मेरा जी चाहता है कि इस स्वप्न के रहते हुए ही मैं अपनी वास्तविकता जान लूँ। यह भी आपकी ही करुणा है जो इस विशाल स्वप्न में इक नन्हीं सी बून्द में यह भाव उठा और वह पुकार उठी - 'मैं कौन हूँ'? जब मैं आपका ही संकल्प हूँ तो यह द्वैत कैसा? आपके संकल्प में यह थोड़ी सी जागृति हुई, इसमें भी प्रयोजन आपका ही होगा। मैं तो इतना जानती हूँ कि मेरे कहे स्वप्न में यह जागृति बहुत कठिन है। हे नटखट! तेरी लीला का जो थोड़ा सा घूँघट उठा, वह तूने ही तो उठाया है - तूने ही तो बताया कि मैं तेरे स्वप्न की मूर्त हूँ' फिर स्वतः कह उठता है - 'इतना बड़ा सौभाग्य मेरा संकल्प पिया मैं तुम्हारी हूँ।'

"जिस संकल्प में मैं सोई रहती थी, जहाँ मेरी आँख ही न खुलती थी, वहाँ आपने थोड़ा सा घूँघट उठाकर अपनी ओर आकर्षित कर लिया, इससे बड़ा सौभाग्य क्या? अब जी चाहता है - मैं उस दृष्टिकोण से देखूँ, जिस दृष्टिकोण से मेरा रचयिता सब रचता है। जिसका यह सारा संकल्प है, मैं उसको जानना चाहती हूँ।"

भगवान कहते हैं कि पहले यह मान ले कि सारा संसार उनका है। यह सब जीव उनके हैं। वह जब चाहे मिलन करवा देंगे, जब चाहे बिछुड़न हो जायेगा। वह किसी सो संयोग कराते हैं, और फिर वही दूर ले जाते हैं - इसमें किसी का कोई दोष नहीं। इस सारे संसार के करतार वह आप हैं।

जब हमें यह बात संसार में पता लगती है, तब हम द्रष्टा की बात कर सकते हैं। फिर पुकार उठती है-

"इतनी करुणा की आपने, अब इतना और कर दीजो।
मैं चरणां एको न छोड़ूँ, हर चरण में सीस मेरा धर दीजो।।
क्योंकि यह तो संकल्प तिहारे हैं।

यह रचना तुम्हारी है, तुमने भेजा जो आया।
लेने आया तो तू आया, देने आया तो तू आया।।
यह सब संकल्प तुम्हारे हैं।।

यदि लेने आया सीस झुके, देने आया तो भी सीस झुके।
क्योंकि दर्शन वहाँ तुम्हारे हैं, सम्पूर्ण कर्म तुम्हारे हैं।।"

कहीं ऐसा न हो, तेरी रचना में, तेरे संकल्प में एक बिन्दु मात्र से मैं संग कर लूँ। तू वही दे जिससे इक पल को यह न भूलूँ यह सब संकल्प तुम्हारा है। अब रही अपनी बात, क्योंकि मैं आपके संकल्प का एक कण है, यह आप से उपजा है, इसलिए यह नित्य है। मैंने एक छोटे से शरीर से संग कर लिया है, परन्तु उसका उद्‌गम स्थान तो आप हैं, आप ही नित्य तत्व सच्चिदानन्द हैं। हे भगवान! मैं आपको ही जानना चाहती हूँ। इस संकल्प से उठकर संकल्पी की ओर जाना चाहती हूँ, केवल आपके लिये जीना चाहती हूँ।'

सर्वप्रथम दृष्टि में यह परिवर्तन आता है कि 'यह संकल्प तुम्हारा है', यह संसार तुम्हारा है, फिर चाहे कोई बुरा से बुरा भी हो, आप उसे बुरा नहीं कहेंगे। जब यह बात समझ में आ गई तो सर्वप्रथम संसार से आपका भिड़ाव ख़त्म हो जाता है पूर्ण का पूर्ण। फिर जो देखा वह राम, जो मिला, वह राम। फिर उन्हीं के चरणों से लिपट कर उन्हीं के संकल्प में उनके होने लगते हैं, यानि शरीर उन्हीं का हो जाता है, तब ही तो आप कह सकेंगे- जो तुलसीदास जी ने कहा -

"राम रूप मैं सब जग जानी, करूँ प्रणाम जोरि जुग पाणि"

फिर आपका अखण्ड सिमरण आरम्भ होता है और पूर्ण उसी का संकल्प समझ आने लगता है। तब जाकर उसी का साक्षित्व मिलने लगता है और अनुभव होता है - "सुखी मीन जिमि नीर अगाधा, जो नर सिमरे न एको बाधा"

हम उसके संकल्प के जाये है, बिना उसके संकल्प की पूर्णता जाने हम भगवान को कैसे समझ सकते हैं? यदि हम उसके संकल्प की वृतियों को निकृष्ट कह कर अपने को श्रेष्ठ ठहराने लगे, तो काम कैसे बनेगा? इसलिए कहते हैं- एक ओर सबको राम रूप जान कर निष्काम कर्म करते जाओ, दूसरी ओर कहो - "राम! तुमसों कम मैं न लूँगी।" तब काम बन जायेगा? ❖

साधना - 'क्षुरस्य धारा' क्यों?

यह लेख अर्पणा प्रकाशन 'ज्ञान विज्ञान विवेक' पर आधारित है। पूज्य माँ के मुख से प्रवाहित काव्य की पंक्तियाँ ज्यों की त्यों ही प्रस्तुत की गई हैं - शान्ता देवी

बिना किसी लक्ष्य के इन्सान यूँ महसूस करता है- जैसे डगमगाती नैया, बिना किसी अच्छे नाविक के। मानव जीवन का लक्ष्य ही उसे एक निर्दिष्ट पथ पर पहुँचा सकता है। साधक वही है- जिसका एक ही लक्ष्य है, सत् की प्राप्ति। उसका हर कर्म तुम साधना कह सकते हो, क्योंकि राम को उसने पाना है। उसने राम को साधना है और साधक वही है जो उसे साधने के यत्न में निरन्तर प्रवृत्त रहे।

वस्तुतः आध्यात्मिक उन्नति के लिये निरन्तर अनथक प्रयास करना ही 'साधना' कहा जा सकता है। एक जिज्ञासु की लग्न जब तीव्र हो उठती है, तब वह मार्ग के सब विघ्नों को उलांघ कर इच्छित फल प्राप्त करता है। ऐसा कहा गया है कि साधना करना "क्षुरस्य धारा" पर चलने के समान है। परम पूज्य माँ से इसका राज़ जानना चाहा कि इसे "क्षुरस्य धारा" क्योंकर कहा और साथ ही मन में यह भी भाव उठा कि साधना किस स्तर पर होनी चाहिए और एक सुघड़ साधक को इस जग में स्वयं को किस रूप में निहारना चाहिये?

बचपन से ही माँ बाप के घर में मेरे आन्तर में धर्म व भक्ति के बीज बोये गये हैं पर साधक व साधना क्या होती है, इससे मैं पूर्णतया अनभिज्ञ थी। परम पूज्य माँ की पुनीत स्थली पर आकर मेरी आध्यात्मिक दृष्टिकोण से सत् को जानने की इच्छा बलवती होती गई तथा सच्चा साधक साधना कैसे करता है, यह जानने की तीव्र भावना जागृत हुई। इससे पूर्व तो इतना भी न जानती थी सत् क्या है और असत् क्या है!

परम पूज्य माँ के सत्संगों द्वारा और उनके पास आशीर्वाद लेने व व्यक्तिगत शंकाओं के निवारण के लिये जाने पर यही बात समझ आई कि - 'साधना बाहर का विषय नहीं है। इसमें मन स्वयं अपने मन को निहारता है। भावना अपने सामने देख कर वह भावना को ही पुकारता है।' जब साधक अपनी भावना को सत् मानता है तब राहों के विघ्नों को देखकर वह मन ही मन घबराने लगता है। शास्त्रों की राही वह जान लेता है जो भावना है वह ही 'मैं' हूँ, तब कुछ कुछ ज्ञान समझ में आने लगता है।

कितनी सुन्दर भाषा में परम पूज्य माँ कहते हैं 'हम स्वयं को इस धरातल पर खड़ा करके 'सोऽहमास्मि' नहीं कह सकते क्योंकि मन जिस पल अपना अवलोकन करता है, वहाँ वह अपने ही अवगुण देख कर और मन का भीषण रूप देख कर घबरा उठता है। सच तो यह है कि अपना मुखड़ा देखने के लिये उसमें हिम्मत ही नहीं होती। इसी कारण वह घबराने लगता है।'

परम पूज्य माँ साधक साधना पर विवेचन करते हुए कहते हैं कि साधारण व्यक्ति-

तुला बना कर जग में जा, जग को तोले जाता है।
भला बुरा अरे इस जग को, बार बार बताता है।।
भेददर्शी बुद्धि यह, गुण अवगुण दर्शी है यह।
शास्त्र पढ़ी कुछ और बढ़ी, जग तोलन् चली है यह।।

अपना विपरीत रूप साधक समझ नहीं पाता। अगर वही साधक शास्त्रों को तुला बना कर उस दर्पण में अपना मुखड़ा देखे, तो वह तड़प उठेगा और उसे अपने ही मुखड़े से नफ़रत होने लगेगी और यदि वह निष्पक्ष दृष्टि से अपने हृदय में बैठ कर, तड़प कर राम का आवाहन करता ह, तो वह निज मुखड़ा देख करी त्राहि त्राहि पुकार उठेगा।

परम पूज्य माँ की विश्लेषणात्मक पैनी दृष्टि से कोई भी साधक व असाधक बच नहीं सका।

मन जिससे द्वेष करता है, उसे दोष भी लगाता है। मन अपनी भावना में जिसे सत् मानता है उस सत् पर वह स्वयं चल नहीं पाता क्योंकि राहों में विघ्न भी मन ही होता है। साधक की साधना आरम्भ ही तब होती है जब वह आन्तर में आ जाता है और बाह्य परिस्थिति से झगड़ा तब तक है जब तक आन्तर्मुखता नहीं। दूसरे की श्रेष्ठता को देख कर वहाँ द्वेष करता है और फिर उसे ही मनोमन दोषी ठहरा देता है। अपने द्वेष की ओर वह देखता ही नहीं। क्योंकि अपना मुखड़ा निहारना ही तो बहुत कठिन है, दूजे को दुत्कारना तो सहज होता है।

साधक तो अपने द्वेषी मन को सहन ही नहीं कर सकता। उसका भिड़ाव अपने काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार से होता है। वह केवल अपने दोष देखता है और अपने दर्शन से डरता नहीं। अपनी अशुद्धता अपनी आन्तर मुखता द्वारा देख कर वह ईश्वर से प्रार्थना कर उठता है, हे राम! 'मुझे मेरे अपने आप से बचाओ जग से नहीं'। इसे ही शास्त्रों में 'क्षुरस्य धारा' पर चलना कहा गया है -

जब मन देखे तब जान लो, आरम्भ साधना होये है।
अरि मन उस पल जानो, मित्र तुम्हारा होये है।।

ज्यों ज्यों मन स्वयं को देखने लगता है तब यह समझ लेना चाहिये कि अब साधना शुरू हो गई है तथा उसी समय तुम्हारा अरि (दुश्मन) मन तुम्हारा मित्र बनना शुरू हो जाता है। इसलिये तो परम पूज्य माँ ने साधक साधना के विश्लेषण पर प्रकाश इन शब्दों में चित्रित किया:

आपुनो मुखड़ा निहारना, बहुत कठिन यह होये है।
दूजे को अरे दुत्कारना, यह तो सहज ही होये है।।
दोष लगाये दूजे पे जा, इससे कुछ न पायेगा।
अपने पे जो दोष धरे, साधक वह हो जायेगा।।
जब वह साधना आप करे, निज मन को स्वयं देख ले।
काम क्रोध मद लोभ मोह से, साधक आप भिड़ जाये।।

तब वह अपना पथ प्रदर्शक स्वयं बन जाता है। उसकी बुद्धि निष्पक्ष, निर्णयात्मिका बुद्धि से प्रेरित होती है। इस प्रकार हमारा यह मन जो विभिन्न प्रकार की कामनाओं, इच्छाओं व चाहनाओं से प्रेरित होता है, अब साधक की सच्ची साधना पर उसकी दृष्टि टिक जाती है। वह दिन प्रतिदिन अपने आन्तर्मन में ही खोने लगता है, क्योंकि जब तक ऐसी स्थिति नहीं आती तब तक वह मोह से ऊपर नहीं उठ पाता।

इस प्रकार जब मन अपने दर्शन आप करे, तो वह साधक हो जाता है। साधक भगवान को साक्षी बनाकर अपने मन को निहारता हुआ एक बात ही कहता है कि हे प्रभु! 'मेरी दृढ़ लग्न, अटूट विश्वास और श्रद्धा तथा आस्था तुम्हारे पर टिक जाये तो ही मेरा चित्त बदलेगा'।

वह तो शुद्ध भावना लिये आन्तर्मन में बैठ कर (आसन लगा कर) निहित मन को देखता हुआ छिपी हुई निहित पुकार भगवान जी के श्री चरणों में आर्त भाव से रखता है।

ऐसा साधक तब भगवान से बस इतनी ही पुकार करता है कि मेरा चित तभी बदलेगा जब मेरा अपने प्रेमास्पद के प्रति श्रद्धा और विश्वास हो, तब ही तो इसमें परिवर्तन आ सकता है। जब ऐसी भावना उठेगी तो मन स्वभावतः राम राम बस राम ही कहेगा और अपना मुखड़ा देख कर मन रो पड़ेगा। अब राम राम कहते कहते वहाँ शब्द नाम रह जायेगा और फिर जब उसमें भाव भरी पुकारेगा तब वही मंत्र बन जायेगा।

यदि साधक निष्पक्ष भाव से अपने हृदय मन्दिर में प्रवेश करता है, तब वह कभी ज्ञान राही, कभी प्रेम राही देखता हुआ बार बार राम राम ही पुकारेगा।

राम सुनो मन देखा नहीं, और देख भी नहीं रे पाता हूँ।
इस कारण हाय राम मेरे, मैं सीस झुका नहीं पाता हूँ।।
कोई मुझ से श्रेष्ठ भी है, यह भी मान नहीं पाता हूँ।
इस कारण हाय राम मेरे, मैं सीस झुका नहीं पाता हूँ।।
जीवन साधना अब भये, बस इतनी बात मैं जान लूँ।
बुरा लगे या भला लगे, अपुनो मन पहचान लूँ।।

इस प्रकार से इस गुह्य रहस्य को परम पूज्य माँ ने जिस सुलभता से समझाया, उसे सुन कर मन गद्‌गद् हो उठा!❖

उपासना और लोक सेवा

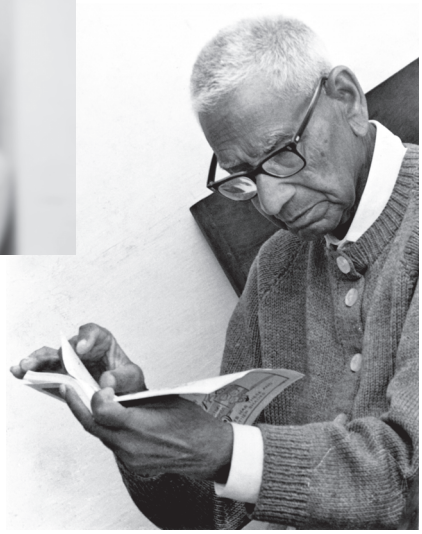

परम पूज्य माँ के पिता जी सी एल आनन्द

पिता जी

उपासना, प्रार्थना और लोक सेवा, ये सत् प्राप्ति के साधन कहे गये हैं। इनसे तात्पर्य क्या है और इनका मिलन कैसे हो?

प्रश्न अर्पण

उपासना किसको कहते हैं, प्रार्थना कहो क्या होती है।
जग सेवा किसको कहें, किस विधि कहो वह होती है।।१।।

उपासना प्रार्थना सेवा को, सत् प्राप्ति साधन कहें।
कही करी यहाँ क्या कहें, इनका मिलन क्यों कैसे करें।।२।।

तत्व ज्ञान

परम गुण सम्पन्न उच्च, पुरुषोत्तम संग सहवास यह।
सत् स्वरूप विलक्षण गुण, समीपस्थ उपासना है यह।।३।।

सत् स्वरूप जीवन जानी, वा जीवन में नित रमण करे।
अचिन्त्य रूप अतीन्द्रिय जो, उपासना राही समझ सके।।४।।

तन या भाव सहवास करे, द्वौ विध उसको पा सके।
दोनों ही हैं उपासना, गर सत् ही नित संग रहे।।५।।

भाव में उसे बिठाये करी, जीवन में संग ले जाओ।
हृदय में हो वा उपासना, जीवन में उसको लाओ।।६।।

सत् भाव और सत् अर्थ, अभिलाषा प्रकट है प्रार्थना।
विनम्र निवेदन गुण मान, उपासना देन है प्रार्थना।।७।।

परम गुण प्राकट्य जान, चाकरी चाह है प्रार्थना।
सेवा वा गुण की करे, सफल करे वा उपासना।।८।।

परम पुरुष की सेवा जान, वा गुण ध्यान ही होयेगी।
आंतर में तोरे गुण बसें, सेवा स्वतः ही होयेगी।।९।।

उपासना पश्चात् हो प्रार्थना, गुण आप में आ जायें।
पुरुषोत्तम की सेवा करे, हर कर्म सेवा ही कहलाये।।१०।।

सत् समीपवर्ती भये, सत् सेवा ही जब करे।
सत् स्वरूप वह हो जाये, साधना सफल तभी भये।।११।।

श्रद्धा पूर्ण हृदय लिये, श्रेष्ठतम जिसको मान ले।
समीप आसन तेरा लगे, उपासना इसको जान ले।।१२।।

सत् के संग आसन लगे, प्रीत सत्य सों हो जाये।
समझे मैं वह नहीं नहीं, द्रवीभूत मन हो जाये।।१३।।

तड़प करी श्रद्धेय को, बिनती करे सत् हो जाऊँ।
विनीत पुकार है प्रार्थना, जिस राही कहे सत् हो जाऊँ।।१४।।

ज्ञान-विज्ञान सहित

पुनि समझ तू समझ मना, उपासना सहवास है।
उपासना संग आसन लगे, उपासना प्रेम की राह है।।१५।।

मन में सत् जब आ जाये, सत् के संग ही जा बैठे।
सत् को ही सत् मान करी, सत्य जान के आ बैठे।।१६।।

सत् समीप वर्तन से, प्रीत बढ़ ही जायेगी।
कभी तो तड़प उठेगी ही, प्रार्थना हो ही जायेगी।।१७।।

उपासना हो फिर संग बढ़े, लग्न भये फिर माँगे उसे।
वह माँग तेरी ज्यों तीव्र भये, प्रार्थना तब ही रूप धरे।।१८।।

जब लौ सत्यता उसमें नहीं, सफल वह हो नहीं पायेगी।
सत्य सों संग जो नहीं हुआ, उपासना विफल हो जायेगी।।१९।।

सत् आसन पे जा बैठे, वा चरण में आसन लग जाये।
प्रीत बढ़े और भक्ति भाव, वहाँ स्वतः ही उमड़ आये।।२०।।

प्रीत बढ़े जब सत्य से, प्रार्थना मंत्र वह आप भये।
अपनी 'मैं' पिघला करी, सत्य रूप वह आप धरे।।२१।।

अहं कृपा जब हो जाये, जो काज करे वह सेवा है।
प्रसाद रूप हर कर्म भये, सत्संग फल ही सेवा है।।२२।।

आप कहो मैं सेवा करूँ, गुमानी ही यह कहता है।
समझे सेवा कर मैं सकूँ, अभिमानी ही यह कहता है।।२३।।

प्रथम उपासना हो जाये, फिर प्रार्थना उठी आये।
तत्पश्चात् जो कर्म करे, सेवा ही बस रह जाये।।२४।।

सत्त्व में जब प्रतिष्ठित हो, अपना कर्म कोई नहीं रहे।
मैं यह करूँ यह न करूँ, ऐसी बात न उठ सके।।२५।।

नारायण बन के कहो, दरिद्र की सेवा तुम करो।
दरिद्र कौन नारायण को', प्रथम इसे तो देख लो।।२६।।

जब 'मैं' करे तो भोग है, हो स्थूल भोग चाहे सूक्ष्म हो।
मान भोगी चाहे वह भये, चाहे ज्ञान का वहाँ भोग हो।।२७।।

जब लौ 'मैं' कुछ करता है, जब लौ 'मैं' कुछ चाहता है।
जब लौ 'मैं' सुनाता है, वह भोगी ही कहलाता है।।२८।।

'मैं' प्रधान हो अहं प्रधान, गुमानी सेवा करने चले।
नारायण तो है अहं रहित, दरिद्र झूठो दम्भ करे।।२९।।

शुभ कर्म तो हो सकें, शुभ का फल तो पायेगा।
पर अपने आप में आ बैठा, यह तो ही नहीं पायेगा।।३०।।

प्रथम उपासना कीजिये, प्रीत तो बढ़ ही जायेगी।
अपने चाहे या सोचे नहीं, वह तो स्वतः उठ आयेगी।।३१।।

पढ़ी पढ़ी पूजा कौन करे, जूठे फूल चढ़ाये न।
भक्त गीत जो गा ही चुके, ऐसा साधक गाये न।।३२।।

आंतर से जो भाव बहें, वह ही गीत बन जाते हैं।
सत्यता पूर्ण गर वह हों, मंत्र वही बन जाते हैं।।३३।।

मंत्र उसे ही मानिये, आप को जो बदल सके।
श्रद्धा हो उपासना हो, प्रार्थना तब ही हो सके।।३४।।

वह जो फूल चढ़ा चुका, जो भाव चरण में आ चुका।
पुनि उसे न देख सका, न गीत पुनः वह गा सका।।३५।।

जो भी भाव इस पल में है, वह पुनि कभी नहीं आयेगा।
ऐसी बात तो हो न सके, कौन वह भाव दोहरायेगा।।३६।।

भक्त की भक्ति प्रेम है, जब सत्य से प्रेम हो भक्ति कहें।
प्रेम में आके सत्त्व कहे, मंत्र की उसे शक्ति कहें।।३७।।

ऐसे मंत्र उस प्रिय को, राम तलक ले जाते हैं।
उपासना गर हो सत्त्व की, तब ही मंत्र बन पाते हैं।।३८।।

जब उपासना प्रथम करी, प्रीत सत्य में बढ़ ही गई।
प्रीत बढ़ी फिर भाव उठी, पूजा आरम्भ हो ही गई।।३९।।

जब आप श्रद्धा में खोया, 'मैं' न रहा वह ही रहा।
फिर कर्म जो भी हुआ, प्रसाद रूप उसने धरा।।४०।।

उसने सेवा करी नहीं, जग कहे वह सेवा करता है।
लोक सेवा गुमान से, सत् उपासक डरता है।।४१।।

फिर जो होये स्वतः होये, वह सेवा ही होये है।
अपना कर्म वह नहीं नहीं, वह राम का ही होये है।।४२।।

पुनि समझ तू समझ मना, राम चरण में बैठ करी।
राम को सत्य ही मान करी, वा जीवन को प्रणाम धरी।।४३।।

वहाँ प्रीत बढ़ी फिर भाव उठी, याचना यह ही तब उठी।
राम मैं राम सा हो जाऊँ, तुममें खोऊँ यही भाव उठी।।४४।।

मैं वह नहीं जो तू है, मैं तुमसा ही हो जाऊँ।
'मैं' मिटे हे राम मेरे, तुममें ही मैं खो जाऊँ।।४५।।

जब ऐसी प्रीत ही लग जाये, अनन्य प्रीत वहाँ हो जाये।
निश्चित है ऐसो मन फिर, राम सा ही हो जाये।।४६।।

वहाँ 'मैं' मिटे 'मेरा' मिटे, दुःख संताप ही नहीं रहे।
दूजा भी कोई है कहीं, ऐसा याद ही नहीं रहे।।४७।।

राम चरण में सीस झुके, पुनः वह उठ नहीं पाता है।
ऐसो प्रेमी एक बार ही, जानो सीस झुकाता है।।४८।।

झुक ही गया अब उठेगा क्या, राम सीस ही रहे वहाँ।
राम करे जो भी होये, बस सेवा ही होये वहाँ।।४९।।

अब स्थूल दृष्टि से सुनो, जग के कोण सों कहते हैं।
सेवा निश्चित चाहिये, बार बार यह कहते हैं।।५०।।

अहं त्यजी के सेवा करो, आप को भूल के तुम करो।
आपुनो कारण नहीं नहीं, दूजे में ख्रो के तुम करो।।५१।।

अपना तन मन भूल करी, दूजा ही होके तुम करो।
निज आंतर में बैठ करी, तन यह तुम जग को दे दो।।५२।।

राम नाम प्रतीक जान, सत् प्रतीक उसे जान ले।
आंतर प्रतीक भये राम का, जीवन राम प्रतीक भये।।५३।।

उपासना उसकी गर होये, प्रीत तो बढ़ ही जायेगी।
कर्मन् में परिणत भये, जब 'मैं' वह होना चाहेगी।।५४।।

जब लौ ज्ञान शब्द ही है, उपासना तब लौ नहीं हुई।
सेवा क्या तू कर सके, जब सत् सो संग ही नहीं हुई।।५५।।

जिस पल संग हो ही गया, हर कर्म सत्मय हो जाये।
उपासना बढ़ती ही जाये, जब लौ एक न हो जाये।।५६।।

निज अहं से 'रक्षमाम्', भगवान से वह कहता है।
बिनती करे वह बार बार, पुकार पुकार के कहता है।।५७।।

त्राहि त्राहि पुकारे जब, जग प्रति नहीं कहता है।
अपनी सूरत देख्र करी, वह पुकारता रहता है।।५८।।

'बचाओ राम रक्षा करो, मोरी मुझी से' कहता है।
क्रूर वृत्ति अपनी देख्री, 'पाहिमाम्' वह कहता है।।५९।।

एक भी शब्द जो भक्त कहे, जग के प्रति नहीं कहता है।
अपने प्रति निज वृत्तियन् के, प्रति ही भाव में बहता है।।६०।।

जो अपने आपको बात कहे, वह तो मंत्र बन जाये है।
निज उद्धार को जो कहे, प्रार्थना वह कहलाये है।।६१।।

भक्तिमय हो पूजन गर, हर भाव मंत्र बन जाता है।
वह मंत्र हो भाव पूर्ण, निश्चित फल वह पाता है।।६२।।

भावना का दीपक जले, फिर सत्त्व की आरती गाता है।
विक्षेप भरा जो मन उसका, उसमें ही बल जाता है।।६३।।

निर्बल के बल राम भये, श्रद्धा जो वहाँ हो जाये।
अपने आप से ही उठना, तीव्र लग्न से वह चाहे।।६४।।

केवल निज परिवर्तन ही, वह साधक अब चाहे है।
कोई बदले या न बदले, अस भाव उठ नहीं पाये है।।६५।।

भयभीत अपने आप से, देख वह साधक हो गया।
अपने भाव में आप ही, अब वह साधक खो गया।।६६।।

कौन कर्म को' यत्न करे, जो हो गया सो हो गया।
'मैं' नहीं वहाँ उठ सका, कर्म स्वतः ही हो गया।।६७।।

वह सेवा अब क्या करे, रोम रोम में राम बसें।
राम तत्व सेवन किये, वा अंग पुष्टि पा चुके।।६८।।

राम के गुण सों संग हुआ, वा गुण रस उस पी ही लिया।
हर अंग से रस जो बहा, सेवन जग ने उसका किया।।६९।।

भक्त ने सेवा नहीं करी, हर अंग से सेवित ही बहा।
सत्त्व तत्व उसने पिया, जीवन वह ही बन गया।।७०।।

वा वाक् ही चरणामृत जानो, सत्पूर्ण वह होये है।
वा कर्म राम कर्म जानो, वह 'मैं' पूर्ण नहीं होये है।।७१।।

वह फल निश्चित लायेगा, वा पाछे है सत्त्व छिपा।
वह आप नहीं देख सका, जिस देखा उस देख लिया।।७२।।

वह तो कर्म से हुआ परे, वह क्या अब कर सके।
दिनचर्या में तन विचरे, स्वतः ही सेवा हुआ करे।।७३।।

जो देखे वह सेवा देखे, जो देखे प्रेम वहाँ देखे है।
जो देखे वहाँ राम का, केवल नेम ही देखे है।।७४।।

जो देखे उसे भक्त कहे, सेवादार भी कहता है।
उपासना वह ही करता है, यह संसार ही कहता है।।७५।।

उसको जा के पूछ लो, वहाँ ऐसी बात कोई नहीं नहीं।
उसने कोई भी कर्म किया, उस को याद ही रहे नहीं।।७६।।

हुआ सत् संग फिर उपासना, फिर सेवन सत् गुण हुआ।
सेवा जग ने नाम दिया, जो भी कर्म वा तन ने किया।।७७।।

३१.३.१९६६

हम सभी के अतीव प्रिय बीजी के प्रति श्रद्धांजलि

आभा भण्डारी

"हम मृत्यु का भय क्यों करें? तन की मृत्यु तो परम रचयिता से हमारे मिलन का आनन्द उत्सव है.. फिर क्यों न हम इस जीवन को श्रेष्ठ और निष्काम कर्मों की सुंदर माला गूँथने में व्यतीत करें.. माला, जिसे हम अपने दिव्य रचयिता को अर्पित कर सकें!"

परम पूज्य माँ के इन्हीं प्रेरणादायक शब्दों को अपने जीवन का आधार बना कर.. हम सब के प्रिय बीजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन प्रेम, करुणा, उदारता और तद्रूपता के गुणों की सुन्दर पुष्प-माल पिरोने में बिताया। मुझे विश्वास है कि वह उस सुन्दर माला को इस समय उस परम इष्ट के गले में पहरा रहे होंगे। सम्भवतया वो उत्सुकता से प्रतीक्षा

कर रहे थे.. उस क्षण की.. जब इन सुगन्धित सुकर्मों की माला हाथ में लिये वह उनका साक्षात्कार करेंगे और उनके चरणों में अर्पित कर पायेंगे। मैं बीजी को १९६३ में मिली थी। मुझे कभी नहीं लगा कि उन्होंने मुझे अपनी जन्म दी हुई बेटियों विष्णु बहिनजी, अनु और प्रिया से कभी अलग समझा हो। इन पिछले ५६ वर्षों में मुझे उनसे भरपूर प्रेमपूर्वक देखभाल और उदारता मिली। वो मेरी माँ हैं और उससे भी कहीं बढ़कर...

भगवान जी में और पूज्य माँ में उनकी अपार श्रद्धा ने उनको जीवन की अनेकों कठिनाइयों को पार करने की क्षमता दी। पूज्य माँ से प्रवाहित दिव्य ज्ञान एवं उनके जीवन की दिव्यता को देख कर वह श्रद्धा दिन प्रतिदिन बढ़ती चली गई। परम पूज्य माँ के प्रति उनकी सेवा सतत एवं भक्ति से परिपूर्ण थी। इसी सेवा ने ही उन्हें बढ़ते हुए परिवार की निःस्वार्थता पूर्ण सेवा करने के भाव को बल दिया।

मुझे याद नहीं कि आश्रम में से कभी भी किसी की या किसी आगन्तुक की ही अथवा किसी राहगीर की कोई आवश्यकता रही हो और उन्होंने उसका समाधान न किया हो। एक पल के लिए भी विचार किये बिना वह उस व्यक्ति के पास जाकर बहुत प्रेम से आवश्यकतानुसार उसकी देखभाल करतीं। जो कोई भी बीमार होता उसकी पूर्ण देखभाल करतीं और दिन में अनेकों बार उसे देखने जातीं कि उसे खाना, दवाईयाँ इत्यादि मिली या नहीं.. और उनका अथाह प्रेम तो सब के लिये था ही..

अर्पणा द्वारा अस्पताल आरम्भ करने पर फार्मेसी में दवाईयाँ देने की ज़िम्मेवारी बीजी को सौंपी गई.. वहाँ पर भी यदि किसी मरीज़ को आवश्यकता होती तो वह आधी रात को भी फ़ार्मेसी में जाने को रत्ती भर भी संकोच न करतीं। उनका खाना.. उनका समय.. उनका आराम.. सब कुछ दूसरों की सेवा के लिये था। उनका प्रेम ऐसा था कि अनेकों बार अपने घरेलू नुस्खों द्वारा.. क्रोमोथेरॅपि से.. वह मरीज़ों का गला ख़राब होने पर नीला तेल, पीड़ा हरने के लिए लाल

फार्मेसी में ड्यूटी पर

तेल या हरा पानी इत्यादि दिया करती थीं.. जिससे उन्हें महेंगी दवाईयाँ न लेनी पड़ें.. और वे सब उनके इस प्रेम से ही ठीक हो जाते थे। क्रोमोथेरॅपि में उनका व्यापक ज्ञान.. हम सब पर भी आज़माया जाता था। उनके कमरे के बाहर एक छोटे से लकड़ी के शेल्फ़ के ऊपर, उनकी निगरानी में हर समय पानी की भरी हुई कम से कम १० हरी बोतलें रखी रहतीं, जिन्हें वह सूर्य की उर्जा से सभी के स्वास्थ्य के लिये तैयार करतीं।

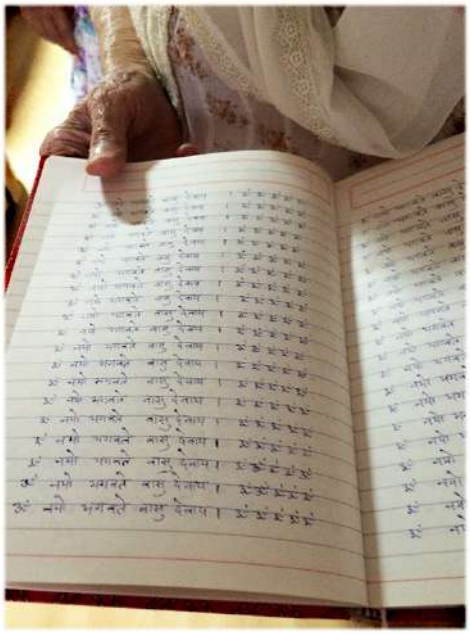

और किस प्रकार प्रेमपूर्वक उन्होंने 'उर्वशी,' परम पूज्य माँ के प्रज्ञा प्रवाह को अनेकों बहुपृष्ठिये नोटबुक्स में लिखा। उन पृष्ठों पर लिखी जा रही पूज्य माँ की दिव्य वाणी उनकी मोती रूपा लिखाई के साथ ही साथ उनके हृदय में भी अंकित हो रही थी। इन लिखित शब्दों द्वारा उनके निरन्तर ध्यान का परिणाम उनके जीवन के अंतिम वर्षों में भी प्रत्यक्ष हुआ। भगवत् नाम से भरी हुई उनकी अनेकों कॉपियाँ आज भी हमारे पास हैं जो हमें प्रेरित करती हैं कि हमारी भक्ति ऐसी होनी चाहिये जो हमें भगवान के चरणों तक ले जाये।

उनके पास अविश्वानीय धैर्य था। जब मेरे पिता ने परम पूज्य माँ द्वारा हिन्दी में की गई श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या को अंग्रेज़ी में अनुवादित करने का कार्य उठाया तो उनको बड़ी समस्या हुई। उन्हें हिन्दी पढ़नी नहीं आती थी.. इसलिये उन्हें आवश्यकता थी - एक ऐसे सहायक की जो उन्हें उसे उर्दू में लिखने में मदद कर सके.. बीजी ने स्वेच्छा और प्रसन्नता से इस कार्य को अपने ऊपर लिया और १३०० पृष्ठों से अधिक हिन्दी की गीता को उन्हें उर्दू में लिखने की सहायता की ताकि वह अपना अनुवाद कर सकें। एक वर्ष से अधिक चले इस अभियान में बीजी ने उन्हें कभी यह एहसास नहीं दिलाया कि वह उनकी बड़ी सेवा कर रहीं थीं। अर्पणा द्वारा प्रकाशित श्रीमद्भगवद्गीता का अंग्रेज़ी अनुवाद, जो साधक के लिये अतीव सुन्दर आध्यात्मिक प्रेरणा स्रोत् है, इन दोनों के इस अथक प्रयास का ही परिणाम है।

मुझे याद है एक बार मुझे निमोनिया हो गया था.. किस प्रेम से वह नित्य दो बार मेरे पास आतीं और अपने जादूई तेलों से मेरे गले और छाती पर मालिश करवाने के लिये मुझ से अनुरोध करतीं। मैं किस प्रकार उनका विरोध करती और यह जानते हुए कि मेरे लिए क्या ठीक है.. वह अपनी बात पर टिकी रहतीं। चिलचिलाती धूप हो अथवा बारिश.. उनके पाँव की आवाज ही मुझे बता देती कि उनका प्यार मुझे ठीक करने के लिये आया है। मैं अनेकों बार उनको कहती, "बीजी, आप धीरे क्यों नहीं चलते? छत का फर्श बड़ा गीला और फिसलने वाला है.." पर उनको हमेशा जलदी रहती क्योंकि वह अपने

जीवन के हर क्षण में अपना प्यार बाँट कर अपने निष्काम कर्मों से भगवान के लिये एक सुंगन्धित माला बना रहीं थीं।

फिर मिलेंगे बीजी! मैं आपकी आभारी हूँ। मैं उस समय का इंतज़ार करूँगी जब हम इस जीवन की यात्रा में फिर मिलेंगे.. मैं आपका धन्यवाद करती हूँ मुझे सिखाने के लिये कि प्रेम क्या है। आपकी सेवा की दृढ़ भावना को मैं नमस्कार करती हूँ। आप मेरे लिये एक माँ, एक मित्र, एक पथ-प्रदर्शक और प्रेरणा शक्ति हैं जिनका मैं जीवन में अनुसरण करना चाहूँगी! ❖

..अर्पणा में हम सभी कृतज्ञतापूर्ण हृदयों से विनीत भाव से आपके

दिव्य गंतव्य की यात्रा के लिए.. मंगल कामना करते हैं !

परम पूज्य माँ

अर्पणा
समाचार पत्र

अर्पणा ट्रस्ट, मधुबन,
करनाल, हरियाणा
दिसम्बर २०१९

अर्पणा आश्रम के आयोजन

'उर्वशी' दिवस

आज, हमें इस ज्ञान की पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है.. ज्ञान, जो हमें अपने आप से मिला दे। हमारे रचयिता के साथ हमारा योग कराने की राह में सब बाधायें पार करवा दे। २ अक्तूबर १९५८ को, परम पूज्य माँ के मुखारविन्द से ऐसे ही अमूल्य भक्तिमय ज्ञान का प्रवाह गायन रूप में आरम्भ हुआ।

पूज्य छोटे माँ एवं 'उर्वशी' के इस प्रवाह का गहरा सम्बन्ध भगवान जी ने पहले ही निर्माण कर दिया था क्योंकि इसी दिन पूज्य छोटे माँ का जन्मदिवस भी है। पूज्य छोटे माँ के जीवन का उद्देश्य इस उर्वशी प्रवाह को मानव कल्याण हेतु लेखनीबद्ध करना था। उन्हीं के अथक प्रयास का यह परिणाम है कि आज परम पूज्य माँ द्वारा दिए गए ज्ञान का एक अपार सागर हमारे पास है।

अर्पणा में २/१०/२०१९ को यह उत्सव मनाया गया जहाँ सबने मिल कर अर्पणा मन्दिर और समाधि स्थल पर पूज्य माँ के दिव्य गायन और वाणी का आनन्द उठाया। उर्वशी ललित कला अकादमी, मॉडल टाउन, करनाल से आए हुए गायकों ने कृतज्ञ भाव से भजन प्रस्तुत किए।

बीजी को श्रद्धांजलि

अर्पणा के पूज्य एवं अतीव प्रिय श्रीमती सत्य महता, डॉ. जे.के. महता (अर्पणा के पूर्व चेयरमैन जिन्हें सब पापा जी कह कर जानते थे।) की पत्नी ने २०/०९/२०१९ को अपने दिव्य धाम के लिए प्रस्थान किया। उनका सम्पूर्ण जीवन प्रेम, निःस्वार्थ सेवा और सबके साथ तद्रूपता का एक विस्तृत प्रवाह रहा है।

वह एक माँ थीं, और मित्र भी.. जिनका हृदय उनके सम्पर्क में आने वाले हरेक व्यक्ति के लिए धड़कता था।

ग्रामीण सशक्तिकरण

सुदूर हिमाचल के गाँवों में सिंचाई टैंक

१५ अक्तूबर को हिमाचल प्रदेश के चम्बा ज़िले में दादर और नैनी गाँव में २ सिंचाई टैंकों का निर्माण शुरु किया गया। यह गाँव चम्बा शहर से १६ किलो मीटर की दूरी पर हैं, जहाँ पक्की सड़क तक पहुँचने के लिये १० किलो मीटर तक पैदल चलना पड़ता है। पहाड़ी लोग सब्ज़ियाँ उगाना चाहते हैं लेकिन उनके पास सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध नहीं है। इन टैंकों से १३९ पहाड़ी लोग (२५ परिवार) लाभान्वित होंगे, जो अब सब्ज़ियाँ उगा पायेंगे, जिनकी बिक्री से उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होगा।

पानी की टंकी के साथ
स्वयं सहायता समूह के सदस्य

आम सभा

४३० महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) के विकास महासंघ ने अपनी वार्षिक आम सभा ३ नवम्बर को गाँव अराईपुरा में आयोजित की, जहाँ श्री अभिमन्यु, डीडीएम, करनाल, और सुश्री आयशना कल्याण (जो अपने पिता, स्थानीय विधायक का प्रतिनिधित्व कर रही थीं), मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे।

'नारद' प्लास्टिक का उपयोग बंद
करने के लिए सभी को प्रेरित करते हुए!

भारत सरकार के कार्यक्रम, 'स्वच्छ भारत', 'स्वस्थ भारत' और 'प्लास्टिक मुक्त भारत' के विषयों पर अर्पणा प्रशिक्षकों द्वारा एक लघु नाटक प्रस्तुत किया गया। इसे वहाँ भाग लेने वाली १,२०० एसएचजी महिलाओं द्वारा पसंद किया गया और सराहा गया। उन्होंने आपस में चर्चा भी करी कि इन गतिविधियों को अपने गाँवों में कैसे लागू कर सकती हैं।

सभी भाग लेने वाली महिलाओं ने प्लास्टिक का उपयोग न करने और अपने गाँवों को प्लास्टिक मुक्त करवाने की प्रतिज्ञा ली। इसके पश्चात प्रीति भोजन का आयोजन किया गया जिसे एसएचजी महिलाओं ने स्वयं बनाया और परोसा।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अनुदान के लिए टाइड्ज़ फाउंडेशन एवं इन्टरनैशनल डिज़ास्टर एण्ड रिलीफ़ फण्ड (IDRF), **यूएसए, को हमारी गहरी कृतज्ञता!**

अर्पणा अस्पताल की वर्षगांठ

अर्पणा सदस्यों, डॉक्टरों और कर्मचारियों ने २ अक्तूबर को अर्पणा अस्पताल की ३९वीं वर्षगांठ मनाई। आधुनिक चिकित्सा एवं देखभाल प्रदान करने के लिये ग्रामीण मरीज़ों हेतु स्थापित हुआ अर्पणा अस्पताल, आज भी अपना उद्देश्य पूरा कर रहा है।

निःशुल्क चिकित्सा शिविर

निःशुल्क एंडोस्कोपी और स्त्री रोग शिविर

अर्पणा से जुड़े दिल्ली के सम्मानित स्वयंसेवी डॉक्टरों, द्वारा ये शिविर अगस्त और सितम्बर में अर्पणा अस्पताल में आयोजित किए गये।

डॉ. राहुल गुप्ता, MBBS, DNB, FIMS, MNAMS, जो Holy Family अस्पताल, Fortis Escorts अस्पताल, National Heart Institute, PSRI, नई दिल्ली में सलाहकार चिकित्सक और गैस्ट्रोएंटेरोलॉजिस्ट हैं, ने २५ अगस्त को एक एंडोस्कोपी शिविर का आयोजन किया जिसमें १८० मरीज़ों की जाँच की गई और ५८ मरीज़ों को एंडोस्कोपी प्रक्रिया प्रदान की गई। इनमें से १२१ मरीज़ ग्रामीण क्षेत्र से थे।

डॉ. राहुल गुप्ता द्वारा एंडोस्कोपी

२९ सितम्बर को दूसरा एंडोस्कोपी शिविर आयोजित किया गया जिसमें डॉ. राहुल ने १९७ मरीज़ों की जाँच की। ५१ इंडोस्कोपिक प्रक्रियाएं ग्रामीण क्षेत्रों के रोगियों के लिए थीं।

डॉ. लीना गुप्ता, MBBS, DNB, MNAMS, जो Fortis La Femme अस्पताल के स्त्री रोग विभाग में वरिष्ठ सलाहकार हैं, ने एक स्त्री रोग शिविर का आयोजन किया, जिसमें १७६ रोगियों की जाँच की।

मरीज़ों के साथ डॉ. लीना गुप्ता

९ नवम्बर को शल्य चिकित्सा शिविर

९ नवम्बर को अर्पणा अस्पताल में एक शल्य चिकित्सा शिविर आयोजित किया गया जिसमें डॉ. विवेक आहूजा द्वारा ६९ ग्रामीण क्षेत्रों के रोगियों को मुफ्त परामर्श दिया गया। ११ मरीज़ों को ऑपरेशन की सलाह दी गई और १९ मरीज़ों को अर्पणा अस्पताल के अन्य विभागों में भेजा गया।

बकरोटा सेन्टर डलहौज़ी में निःशुल्क स्त्री रोग, हड्डी रोग एवं चिकित्सा शिविर

१० नवम्बर को बकरोटा सेन्टर में एक निःशुल्क स्त्री रोग, अस्थि रोग एवं चिकित्सा शिविर का आयोजन किया गया। बर्फबारी और अत्यधिक ठंड के कारण रोगियों की संख्या सीमित रही लेकिन बन्नी, जम्मू कश्मीर से आये ४१ रोगियों ने इससे विशेष लाभ उठाया।

सुलतानपुर, चम्बा के राणा अस्पताल के ऑर्थो सर्जन, डॉ. प्रशांत राणा ने रोगियों की जाँच की।

निःशुल्क चिकित्सा शिविरों का प्रायोजन करने के लिए हम फ्रेन्डस ऑफ कल्पना और जयदेव देसाई (यूएसए) तथा बैजनाथ भंडारी पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट, नई दिल्ली के अत्यन्त आभारी हैं।

दिल्ली के कार्यक्रम

अर्पणा के भूतपूर्व छात्रों का योगदान

३० सितम्बर को अर्पणा के ३ भूतपूर्व छात्र, जो अब 'वैस्टसाइड', टाटा के एक रिटेल उपक्रम, में कार्यरत हैं, ने बालवाटिका में एक जागरूकता सत्र का आयोजन किया जिसमें उन्होंने छोटे बच्चों को अच्छी-बुरी आदतों के बारे में बताया, साथ में यह भी सीख दी कि अजनबियों से न कुछ लें और न ही उनके साथ कहीं जायें।

स्कूल शिक्षकों के लिये मनोसामाजिक परामर्श

२८ सितम्बर को अर्पणा ट्रस्ट के शिक्षकों ने स्वामी शिवानंद मेमोरियल इंस्टीट्यूट में एक कार्यशाला में भाग लिया, जहाँ श्रीमती विजयलक्ष्मी के साथ उनके कई प्रभावी संवादात्मक सत्र हुए।

अर्पणा के शिक्षा केन्द्र, बालवाटिका में मेडिकल और डेंटल जाँच शिविर

अपोलो अस्पताल की सांझेदारी के साथ, चॉकलेट फाउंडेशन द्वारा ५ जुलाई को एक स्वास्थ्य शिविर आयोजित किया गया जिसमें अपोलो अस्पताल के डॉक्टरों ने नर्सरी के २२० बच्चों की मेडिकल तथा ६७ बच्चों के दांतों की जाँच करी।

डेंटल जाँच

अर्पणा अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में सहायता करने के लिए अवीवा पीएलसी, यूके, एस्सेल फाउंडेशन, नई दिल्ली, टेक्निप इंडिया, केयरिंग हैंड फॉर चिल्ड्रन, यूएसए एवं अर्पणा कनाडा का अत्यन्त आभारी है।

Your compassionate support sustains Arpana's Services

Arpana Trust and Arpana Research & Charities Trust are both approved under Section 80G of the Income Tax Act, 1961, giving 50% tax relief for donors in India.
FCRA Registration No. for Arpana Trust is 172310001
FCRA Registration No. for Arpana Research & Charities Trust is 172310002
Send your contribution for dissemination of humane values & medical and community welfare services in Delhi to:

Arpana Trust, Madhuban, Karnal, Haryana 132037
Send your contributions for health & development services in Haryana & Himachal to:

Arpana Research & Charities Trust, Madhuban, Karnal, Haryana 132037
Send contributions in USA to:

Mr. Vinod Prakash, President, IDRF, 5821 Mossrock Drive, North Bethesda, MD 20852
Mr. Jagjit Singh, AID for Indian Development, 84 Stuart Court, Los Altos, CA 94022-2249
Send contributions to Arpana Canada:

c/o Mrs. Sue Bhanot, 7 Scarlett Drive, Brampton, Ontario L6Y 3S9, Canada
Please let us know by email or telephone, whenever you transfer funds to Arpana.
Information & Resources Office: 91-184-2390905 **Executive Director:** 91-9818600644
emails: **at@arpana.org and arct@arpana.org**

Contact person: Mrs. Aruna Dayal, Director Development. Mobile 91-9991687310
Websites: **www.arpana.org** **www.arpanaservices.org**

Arpana Ashram

Research

Publications & CDs

Arpana endeavours to share its treasure of inspiration – the life, words and precept of *Pujya Ma*, through the publication of books and cassettes.

Publications

श्रीमद्भगवद्गीता	
भगवद् बाँसुरी में जीवन धुन	Rs.300
कठोपनिषद् (हिन्दी)	Rs.120
श्वेताश्वतरोपनिषद्	Rs.400
केनोपनिषद्	Rs.36
माण्डूक्योपनिषद्	Rs.25
ईशावास्योपनिषद्	Rs.20
प्रश्नोपनिषद्	Rs.50
गंगा श्रद्धा प्राणप्रद	Rs.40
प्रज्ञा प्रतिभा	Rs.30
ज्ञान विज्ञान विवेक	Rs.60
मृत्यु से अमृत की ओर	Rs.36
जपु जी साहिब	Rs.70
अर्पणा भजनावली	Rs.80
वैदिक विवाह	Rs.24
गायत्री महामन्त्र	Rs.20
नाम	Rs.15
अमृत कण	Rs.12

Lets Play the Game of Love	Rs. 400
Bhagavad Gita	Rs.450
Kathopanishad	Rs.120
Ish Upanishad	Rs.70
Prayer	Rs.25
Love	Rs.20
Words of the Spirit	Rs.12
Notes	Rs.10

Bhajan CDs

ईशावास्योपनिषद् (a deluxe 8 CD set)	Rs.2000
स्वरांजलि - भाग १ और २	Rs.175each
नमो नमो	Rs.175
उर्वशी भजन	Rs.175
हे राम तुझे मैं कहती हूँ	Rs.75
गंगा (भाग १ और २)	Rs.75each
राम आवाहन	Rs.75
तुमसे प्रीत लगी हे श्याम	Rs.75
हे श्याम तूने बंसी बजा	Rs.75

For ordering of books, please address M.O./DD to: **Arpana Publications** (payable at Karnal). Kindly add Rs. 25 to books priced below Rs. 100 & Rs. 40 to books above Rs. 100 as postal charges

Arpana Pushpanjali

Hindi/English Quarterly Magazine

Subscription	**Annual**	**3yrs**	**5yrs**
India	130	375	600
Abroad	350	1000	1650

Advertisement	**Single**	**Four**
Special Insertion (Art Paper)	10,000	
Colour Page	3500	12,000
Full Page (b&w)	2000	6000
Half Page (b&w)	1200	4000

(Amounts are in Rupees)

Subscription drafts to be addressed to: **Arpana Trust (Pushpanjali & Publications)**

Delhi Contact Person:
Mrs. Neeta Tandon
E-22 Defence Colony,
New Delhi 110024
Tel: 98712-84847

Donation cheques to be addressed to: Arpana Trust

Arpana Trust *- Donations for Spiritual Guidance Activities, Publications, Scholarships and Delhi Slum Project. Regd. under FCRA (Regd, number 172310001) to receive overseas donations.*

Applied Research

Medical Services

In Haryana
- 130 bedded rural Hospital
- Maternity & Child Care
- Family Planning
- Eye Screening Camps
- Specialist Clinics
- Continuing Medical Education

In Himachal
- Medical & Diagnostic Centre
- Integrated Medical & Socio-Economic Centre

In Delhi Slums
- Health care to 50,000
- Immunisations
- Antenatal Care
- Ambulance

Women's Empowerment

Capacity Building
- Entrepreneurial activities
- Local Governance
- Micro-Planning
- Legal literacy

Self Help Groups
- Savings
- Micro credit
- Federation
- Community Health
- Exposure Visits

Gender Sensitization

Income Generation through Handicraft Training Skills

Child Enhancement

Education
- Children's Education
- Vocational Education
- Cultural Opportunities
- Day Care Centres
- Pre-school Care & Education

Health
- Nutrition Programme
- School Health Programme

In Delhi Slums
- Environment, Building Parks & Planting trees
- Housing Project
- Waste Management

Arpana Research and Charities Trust *Exempt U/S 80 G (50% deduction) on donations for the hospital & Rural Health Programmes. Regd. under FCRA (Regd. number 172310002) to receive overseas donations.*

Contact for Questions, Suggestions and Donations:

Mr. Harishwar Dayal, Executive Director, Arpana Group of Trusts, Madhuban, Karnal - 132037, Haryana.
Tel: (0184) 2380801- 802, 2380980 Fax: 2380810 Email: at@arpana.org / Web site: www.arpana.org

All donation cheques/ DD to be addressed to : ARPANA TRUST